सम्राट अशोक महान्

स्नातक प्रथम वर्ष
प्राचीन इतिहास

डॉ. विश्वनाथ वर्मा

एसोसिएट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष

प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग

हरिश्चंद्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय वाराणसी (उ.प्र.)

E-mail : drvn.verma@gmail.com

Website : www.worldwidehistory.com

सम्राट अशोक महान्

अशोक महान् की गणना प्राचीन विश्व के महानतम् शासकों में की जाती है। उसके समय में मौर्य साम्राज्य उत्तर में हिंदुकुश की श्रेणियों से लेकर दक्षिण में गोदावरी नदी के दक्षिण मैसूर, कर्नाटक तक और पूर्व में बंगाल से पश्चिम में अफगानिस्तान तक विस्तृत हो गया था। यह उस समय तक का सबसे बड़ा भारतीय साम्राज्य था। वस्तुतः इतिहास में अशोक की प्रसिद्धि उसके साम्राज्य-विस्तार के कारण नहीं, वरन् धार्मिक भावना और मानवतावाद के प्रचारक के रूप में है। संभवतः वह विक्व का प्रथम सम्राट था जिसने साम्राज्यवादी युग में युद्ध की नीति का त्यागकर अपनी प्रजा का पित्रवत् कल्याण करने का सच्चे हृदय से प्रयत्न किया।

अशोक के संबंध में जानकारी करने के प्रमुख साधन उसके शिलालेख तथा स्तंभों पर उत्कीर्ण अभिलेख हैं, जो लगभग चालीस की संख्या में भारत, पाकिस्तान और अफगानिस्तान के विभिन्न स्थानों से पाये गये हैं। किंतु इन अभिलेखों से उसके प्रारंभिक जीवन पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता है। अशोक के प्रारंभिक जीवन के लिए मुख्यतः संस्कृत तथा पालि में लिखे हुए बौद्ध ग्रंथों- दिव्यावदान तथा सिंहली अनुश्रुतियों पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

आरंभिक जीवन

सिंहली परंपरा में बिंदुसार की सोलह पटरानियों और 101 पुत्रों का उल्लेख मिलता है। पुत्रों में केवल तीन का उल्लेख है- सुसीम, अशोक और तिष्य। सुमन या सुसीम अशोक का बड़ा, किंतु सौतेला भाई था। तिष्य सहोदर और सबसे छोटा भाई था, जिसका नाम उत्तरी परंपरा में वीताशोक या विगताशोक भी मिलता है। ह्वेनसांग इसका नाम महेंद्र बताता है और अन्य चीनी ग्रंथों में सुदत्त और सुगात्र नाम भी आये हैं। उत्तरी परंपराओं में अशोक की माता का नाम सुभद्रांगी मिलता है, जिसे चंपा के एक ब्राह्मण की रूपवती कन्या बताया गया है। दिव्यावदान में अशोक की माता ब्राह्मणी पासादिका का उल्लेख मिलता है। दक्षिण की सिंहली परंपरा में उसकी माता का नाम धर्मा (धम्मा) मिलता है। धर्मा को अग्रमहिषी (अग्ग-महेसी) कहा गया है जो मोरियों के क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुई थी। रोमिला थापर के अनुसार अशोक के धम्माशोक अभिधान में माता के धम्मा नाम की स्मृति सुरक्षित है। संभवतः इसी कारण अशोक ने धम्म का आह्वान भी किया था। कुछ विद्वान् अशोक को सेल्यूकस की कन्या से उत्पन्न बताते हैं।

सिंहली परंपराओं के अनुसार उज्जयिनी जाते हुए अशोक ने विदिशा में एक श्रेष्ठि की पुत्री देवी से विवाह किया था। महाबोधिवंस में उसे वेदिसमहादेवी और शाक्यानी या शाक्यकुमारी कहा गया है। महावंस व दिव्यावदान में अशोक की दो अन्य पत्नियों का नाम क्रमशः अग्रमहिषी असंधिमित्रा व तिष्यरक्षिता मिलता

है। दिव्यावदान में ही अशोक की एक अन्य अग्रमहिषी पद्मावती का उल्लेख मिलता है जिससे पुत्र कुणाल (धर्मविवर्धन) उत्पन्न हुआ था। अशोक के लेखों में केवल उसकी पत्नी कारुवाकी का उल्लेख मिलता है, जो तिवर की माता थी। अशोक की पहली पत्नी देवी से पुत्र महेन्द्र तथा पुत्रियाँ संघमित्रा व चारुमती उत्पन्न हुई थीं, जिनका विवाह क्रमशः अग्निब्रह्मा व नेपाल के देवपाल क्षत्रिय से हुआ था। राजतरंगिणी में अशोक के एक पुत्र का नाम जालौक मिलता है। इस प्रकार अशोक ने कम से कम चार विवाह किया था और उसके चार पुत्र तथा दो पुत्रियाँ थीं। लेखों में दूर के चार प्रांतों के वायसराय के रूप में चार पुत्रों का उल्लेख है, जिन्हें 'कुमार' या 'आर्यपुत्र' कहा गया है।

अशोक अपने पिता के शासनकाल में उज्जयिनी का उपराजा (वायसराय) था। बाद में जब तक्षशिला में विद्रोह हुआ, तो बिंदुसार ने उसे दबाने के लिए अशोक को ही भेजा था। शासक बनने के पूर्व अशोक ने खस और नेपाल की विजय भी की थी। बौद्ध ग्रंथों से पता चलता है कि बिंदुसार अशोक को उत्तराधिकार देने का इच्छुक नहीं था। सिंहली अनुश्रुतियाँ बताती हैं कि उसने अपने निन्यान्बे भाइयों की हत्याकर राजसिंहासन प्राप्त किया था, किंतु इस कथा की ऐतिहासिकता और प्रमाणिकता संदिग्ध है क्योंकि अशोक के पाँचवें अभिलेख में उसके जीवित भाइयों के परिवार का उल्लेख मिलता है। अभिलेखीय साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि शासनकाल के तेरहवें वर्ष में उसके अनेक भाई-बहन जीवित थे और कुछ भाई तो विभिन्न प्रदेशों में वायसराय भी थे।

वस्तुतः बिंदुसार की मृत्यु के बाद अशोक ने अमात्य राधागुप्त की सहायता से राजसिंहासन पर अधिकार कर लिया था। उत्तरी बौद्ध परंपराओं में यह युद्ध केवल अशोक और उसके भाई सुसीम के बीच बताया गया है और यही तर्कसंगत लगता है। हो सकता है कि सत्ता-संघर्ष में सुसीम का पक्ष लेने के कारण कुछ अन्य भाई भी मारे गये हों। चीनी ग्रंथ फा-युएन-चुलिन से भी पता चलता है कि अशोक ने अपने बड़े भाई सुसीम को मारकर राज्य प्राप्त किया था। वस्तुतः ई.पू. 273 में राजसिंहासन पर अधिकार करने के बाद अशोक को अपनी स्थिति सुदृढ़ करने में चार वर्ष का समय लग गया। यही कारण है कि उसका विधिवत् राज्याभिषेक राज्यारोहण के चार वर्ष बाद लगभग ई.पू. 269 में हुआ।

अशोक को उसके अभिलेखों में 'देवानांप्रिय' (देवताओं का प्रिय) एवं 'प्रियदर्शी' (देखने में सुंदर) तथा 'राजा' आदि कहा गया है। मास्की (हैदराबाद), गुर्जरा तथा पानगुड्इया (मध्य प्रदेश) से प्राप्त लेखों में अशोक के नाम का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। पुराणों में उसे 'अशोकवर्धन' कहा गया है। देवानांप्रिय प्रियदर्शी आदरसूचक पद है और यही अर्थ उपयुक्त है, किंतु 'देवानांप्रिय' शब्द (देवप्रिय नहीं) पाणिनि के एक सूत्र के अनुसार अनादर का सूचक है। कात्यायन, पतंजलि और काशिका (650 ई.) इसे अपवाद मानते हैं, किंतु उत्तरकालीन वैयाकरण भट्टोजिदीक्षित इसका अनादरवाची अर्थ 'मूर्ख' करते हैं। उनके अनुसार 'देवानांप्रिय ब्रह्मज्ञान से रहित उस पुरुष को कहते हैं जो यज्ञ और पूजा से भगवान् को प्रसन्न करने कोयत्न करता है।' इस प्रकार एक उपाधि जो पहले आदरवाची थी, संभवतः ब्राह्मणों के दुराग्रह के कारण अशोक महान् के प्रति अनादरसूचक बन गई।

अपने राज्याभिषेक के नवें वर्ष तक अशोक ने मौर्य साम्राज्य की परंपरागत नीति का ही अनुसरण किया। अशोक ने देश के अंदर साम्राज्य का विस्तार किया, किंतु दूसरे देशों के साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार की नीति अपनाई।

कलिंग की विजय

अपने राज्याभिषेक के नवें वर्ष तक अशोक ने मौर्य साम्राज्य की परंपरागत नीति का पालन करते हुए कलिंग पर विजय प्राप्त की। कलिंग का प्राचीन राज्य वर्तमान दक्षिणी उड़ीसा में स्थित था। संभवतः नंदवंश के पतन के बाद कलिंग स्वतंत्र हो गया था। प्लिनी की पुस्तक में उद्धृत मेगस्थनीज के विवरण के अनुसार चंद्रगुप्त के समय में कलिंग एक स्वतंत्र राज्य था। मगध की सीमाओं से जुड़े हुए ऐसे शक्तिशाली राज्य की स्थिति के प्रति मगध शासक उदासीन नहीं रह सकता था। सुरक्षा की दृष्टि से कलिंग को जीतना आवश्यक था। कुछ इतिहासकारों के अनुसार कलिंग उस समय व्यापारिक दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण राज्य

था। दक्षिण के साथ सीधे संपर्क के लिए समुद्री और स्थल मार्ग पर मौर्यों का नियंत्रण आवश्यक था। कलिंग यदि स्वतंत्र देश रहता, तो समुद्री और स्थल मार्ग से होनेवाले व्यापार में रुकावट पड़ सकती थी, अतः कलिंग को मगध साम्राज्य में मिलाना आवश्यक था। किंतु यह उचित कारण नहीं लगता क्योंकि इस दृष्टि से तो चंद्रगुप्त के समय में ही कलिंग को मगध साम्राज्य में मिला लेना चाहिए था। कौटिल्य के विवरण से स्पष्ट है कि वह दक्षिण के साथ व्यापार को महत्त्व देता था।

अभिषेक के आठवें वर्ष अर्थात् ई.पू. 261 में अशोक ने कलिंग राज्य पर आक्रमण कर दिया। कलिंग युद्ध तथा उसके परिणामों के संबंध में अशोक के तेरहवें शिलालेख से पता चलता है कि इस युद्ध में भीषण रक्तपात और नरसंहार हुआ। मौर्य सम्राट के शब्दों में, 'इस युद्ध के कारण डेढ़ लाख लोग विस्थापित हो गये, एक लाख लोग मारे गये और इससे कई गुना अधिक नष्ट हो गये।' इस प्रकार एक स्वतंत्र राज्य की स्वाधीनता का अंत हो गया और विजित कलिंग राज्य मगध साम्राज्य का एक प्रांत बना लिया गया। राजवंश का कोई राजकुमार वहाँ वायसराय नियुक्त कर दिया गया। कलिंग में दो अधीनस्थ प्रशासनिक केंद्र स्थापित किये गये- एक उत्तरी केंद्र, जिसकी राजधानी तोसली बनाई गई और दूसरा दक्षिणी केंद्र जिसकी राजधानी जौगढ़ बनी। अब मौर्य साम्राज्य की सीमा बंगाल की खाड़ी तक विस्तृत हो गई।

अशोक का हृदय-परिवर्तन

कलिंग युद्ध में हुए भीषण नरसंहार तथा विजित देश की जनता के कष्ट से अशोक की अंतरात्मा को तीव्र आघात पहुँचा। युद्ध की विनाशलीला से सम्राट को इतना हार्दिक कष्ट हुआ कि उसने युद्ध की नीति को सदा के लिए त्याग दिया और दिग्विजय के स्थान पर 'धम्म विजय' की नीति को अपनाया। आठवें शिलालेख में, जो संभवतः कलिंग विजय के चार वर्ष बाद तैयार किया गया था, अशोक ने घोषणा की कि 'कलिंग देश में जितने आदमी मारे गये, मरे या कैद हुए उसके सौवें या हजारवें हिस्से का नाश भी अब देवताओं के प्रिय को बड़े दुःख का कारण होगा।' उसने आगे युद्ध न करने का निर्णय लिया और बाद के इक्तीस वर्ष के शासनकाल में उसने मृत्युपर्यंत कोई लड़ाई नहीं ठानी। उसने अपने उत्तराधिकारियों को भी परामर्श दिया कि वे शस्त्रों द्वारा विजय प्राप्त करने का मार्ग छोड़ दें और धर्मविजय को वास्तविक विजय समझें।'

वास्तव में मगध का सम्राट बनने के बाद यह अशोक का प्रथम तथा अंतिम युद्ध था। इसके बाद मगध की विजयों तथा राज्य-विस्तार का वह युग समाप्त हो गया जिसका सूत्रपात बिंबिसार की अंग-विजय के बाद हुआ था। अब एक नये युग का आरंभ हुआ। यह नया युग शांति, सामाजिक प्रगति तथा धर्मप्रचार का था, किंतु इसके साथ-साथ राजनीतिक गतिरोध व सामरिक शिथिलता भी दिखाई देने लगी। सैनिक-अभ्यास के अभाव में मगध का सामरिक आवेश और उत्साह क्षीण होने लगा। इस प्रकार सैन्य-विजय तथा दिग्विजय का युग समाप्त हुआ और आध्यात्मिक विजय तथा धम्मविजय कोयुग आरंभ हुआ।'

कलिंग की प्रजा तथा कलिंग की सीमा पर रहनेवाले लोगों के प्रति कैसा व्यवहार किया जाये, इस संबंध में अशोक ने तोसली और समापा के महामात्यों तथा उच्च अधिकारियों को सम्बोधित करते हुए दो

आदेश जारी किया था जो धौली (पुरी) और जौगढ (गंजाम) नामक स्थानों पर सुरक्षित हैं। शिलालेखों के अनुसार 'सम्राट का आदेश है कि प्रजा के साथ पुत्रावत् व्यवहार हो, जनता को प्यार किया जाये, अकारण लोगों को कारावास का दंड तथा यातना न दी जाये, जनता के साथ न्याय किया जाना चाहिए। सीमांत जातियों को आश्वासन दिया गया कि उन्हें सम्राट से कोई भय नहीं होना चाहिए। उन्हें राजा के साथ व्यवहार करने से सुख ही मिलेगा, कष्ट नहीं। राजा यथाशक्ति उन्हें क्षमा करेगा, वे धम्म का पालन करें। यहाँ उन्हें सुख मिलेगा और मृत्यु के बाद स्वर्ग।'

धर्म और धार्मिक नीति

इसमें कोई संदेह नहीं कि अपने पूर्वजों की तरह अशोक भी ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। महावंस के अनुसार वह प्रतिदिन साठ हजार ब्राह्मणों को भोजन दिया करता था और अनेक देवी-देवताओं की पूजा किया करता था। कल्हण की राजतरंगिणी के अनुसार अशोक भगवान् शिव का उपासक था। पशुबलि में उसे कोई हिचक नहीं थी, किंतु अपने पूर्वजों की तरह वह जिज्ञासु भी था। मौर्य राज्यसभा में सभी धर्मों के विद्वान् भाग लेते थे, जैसे- ब्राह्मण, दार्शनिक, निर्ग्रंथ, आजीवक, बौद्ध तथा यूनानी दार्शनिक आदि। दीपवंस के अनुसार अशोक अपनी धार्मिक जिज्ञासा शांत करने के लिए विभिन्न सिद्धांतों के व्याख्याताओं को राज्यसभा में बुलाता था। उन्हें उपहारादि देकर सम्मानित करता था और साथ ही स्वयं भी विचारार्थ अनेक प्रश्न प्रस्तावित करता था। वह यह जानना चाहता था कि धर्म के किन ग्रंथों में सत्य है। उसे अपने सवालों के जो उत्तर मिले, उनसे वह संतुष्ट नहीं था।

अशोक और बौद्ध धर्म

सिंहली अनुश्रुतियाँ बताती हैं कि अशोक को उसके शासन के चौथे वर्ष 'निग्रोध' नामक सात वर्षीय श्रमण भिक्षु ने बाद्धमत में दीक्षित किया था। निग्रोध अशोक के बड़े भाई सुसीम (सुमन) का पुत्र था। इसके बाद मोग्गलिपुत्ततिस्स के प्रभाव से वह पूर्णरूपेण बौद्ध हो गया। दिव्यावदान अशोक को बौद्ध धर्म में दीक्षित करने का श्रेय 'उपगुप्त' नामक बौद्ध भिक्षु को देता है। इन भिक्षुओं की शिक्षा तथा संपर्क से अशोक का झुकाव बौद्ध धर्म की ओर बढ़ रहा था। इन अनुश्रुतियों से पता चलता है कि एक साधारण बौद्ध होने के बावजूद अशोक ने कलिंग पर आक्रमण किया था। कलिंग युद्ध के नरसंहार से अशोक की अंतरात्मा को इतना कष्ट पहुँचा कि इस युद्ध के बाद उसने विधिवत् बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। अशोक के शिलालेखों से भी पता चलता है कि वह कलिंग युद्ध के बाद ही धम्म में प्रवृत्त हुआ। किंतु, राज्याभिषेक से संबद्ध प्रथम लघुशिलालेख के अनुसार अशोक एक वर्ष तक एक साधारण उपासक बना रहा तथा उसने धर्म के प्रचार के लिए कोई उद्योग नहीं किया। कुछ इतिहासकारों ने 'संघ की शरण लेने' (संघ उपेते) का यह अर्थ लगाया है कि अशोक भिक्षु का वस्त्र धारणकर संघ में प्रवेश कर गया और संघ तथा राज्य दोनों का प्रधान हो गया। किंतु इस मत से सहमत होना कठिन है। 'संघ उपेते' का वास्तविक अर्थ संघ में प्रविष्टि के लिए उन्मुख होना है, जिसे

बौद्ध साहित्य में 'भिक्षु गतिक' कहा गया है।

संभवतः एक वर्ष तक साधारण उपासक रहने के बाद अशोक ने सार्वजनिक रूप से अपने को संघ का अनुयायी घोषित कर दिया और इस मत-परिवर्तन की सूचना देने के लिए उसने अभिषेक के दसवें वर्ष संबोधि (बोधगया) की यात्रा की। इसके बाद एक वर्ष से कुछ अधिक समय तक वह संघ के साथ रहा या संघ के भिक्षुओं के निकट संपर्क में रहा। इस संपर्क के फलस्वरूप वह धर्म के प्रति अत्यधिक उत्साहशील हो गया। तेरहवें शिलालेख में ही अशोक यह घोषणा करता है कि 'इसके बाद देवताओं का प्रिय धम्म की सोत्साह परिरक्षा, सोत्साह अभिलाषा एवं सोत्साह शिक्षा करता है।' उसने जनता में प्रचार के लिए धर्म-संबंधी उपदेश, शिलाओं एवं स्तंभों पर उत्कीर्ण करवाया जिससे धर्म की आश्चर्यजनक वृद्धि हुई। वह दावा करने लगा कि धम्म की इतनी वृद्धि इसके पहले कभी नहीं हुई थी।

बौद्ध धर्म अपनाने के बाद अशोक का व्यक्तित्व पूरी तरह बदल गया। उसने आखेट और विहार-यात्राओं को बंद कर दिया तथा उनके स्थान पर धम्म-यात्राओं को प्रारंभ किया। उसने गौतम बुद्ध के चरण-चिन्हों से पवित्र स्थानों की यात्राएँ कीं और उनकी पूजा-अर्चना की। दिव्यावदान से पता चलता है कि अशोक ने स्थविर उपगुप्त के साथ क्रमशः लुंबिनी, कपिलवस्तु, बोधगया, सारनाथ, कुशीनगर तथा श्रावस्ती व अन्य स्थानों की यात्रा की थी। संभवतः सर्वप्रथम उसने बोधगया की यात्रा की। अभिषेक के बीसवें वर्ष वह लुंबिनी गया और वहाँ एक शिलास्तंभ खड़ा किया। भगवान् बुद्ध का जन्मस्थान होने के कारण उसने लुंबिनी ग्राम का कर 1/8 भाग लेने की घोषणा की। अशोक ने नेपाल की तराई में स्थित निग्लीवा में कनकमुनि (एक पौराणिक बुद्ध) के स्तूप को संवर्द्धित एवं द्विगुणित करवाया।

अनुश्रुतियों में अशोक को चौरासी हजार स्तूपों के निर्माण का श्रेय दिया गया है। सम्राट अशोक को बौद्ध धर्म का प्रचार करने और स्तूपादि को निर्मित कराने की प्रेरणा धर्माचार्य उपगुप्त ने ही दी थी। जब भगवान् बुद्ध दूसरी बार मथुरा आये थे, तब उन्होंने अपने प्रिय शिष्य आनंद से कहा था कि 'कालांतर में यहाँ उपगुप्त नाम का एक प्रसिद्ध धार्मिक विद्वान् होगा, जो उन्हीं की तरह बौद्ध धर्म का प्रचार करेगा और उसके उपदेश से अनेक भिक्षु योग्यता और पद प्राप्त करेंगे।' इस भविष्यवाणी के अनुसार उपगुप्त ने मथुरा के एक वणिक के घर में जन्म लिया। उसका पिता सुगंधित द्रव्यों का व्यापार करता था। उपगुप्त अत्यंत रूपवान और प्रतिभाशाली था, किंतु वह किशोरावस्था में ही विरक्त होकर बौद्ध धर्म का अनुयायी हो गया था। आनंद के शिष्य शाणकवासी ने उपगुप्त को मथुरा के नट-भट विहार में बौद्ध धर्म के सर्वास्तिवादी संप्रदाय की दीक्षा दी थी।

निःसंदेह, अशोक बौद्ध धर्मानुयायी था। सभी बौद्ध ग्रंथ उसे बौद्ध धर्म का अनुयायी बताते हैं। उसने राज्याभिषेक से संबद्ध प्रथम लघुशिलालेख में अपने को 'बुद्धशाक्य' कहा है। साथ ही यह भी कहा है कि वह ढाई वर्ष तक साधारण उपासक रहा। भाब्रू (वैराट, राजस्थान) लघु शिलालेख (द्वितीय वैराट प्रज्ञापन) में अशोक त्रिरत्न- बुद्ध, धम्म और संघ में विश्वास प्रकट करता है और भिक्षु तथा भिक्षुणियों से कुछ बौद्ध ग्रंथों का अध्ययन एवं श्रवण करने के लिए कहता है।

महावंस तथा दीपवंस के अनुसार उसने तृतीय बौद्ध संगीति बुलाई और मोग्गलिपुत्त तिस्स की सहायता से संघ में अनुशासन और एकता लाने का सफल प्रयास किया, यद्यपि यह एकता थेरवाद बौद्ध संप्रदाय तक ही सीमित थी। अशोक के समय थेरवाद संप्रदाय भी अनेक उपसंप्रदायों में विभक्त हो गया था। सारनाथ तथा साँची के लघुस्तंभ-लेख में संघभेद के विरुद्ध अशोक भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों को चेतावनी देता है कि, 'जो कोई भिक्षु या भिक्षुणी संघ में फूट डालने का प्रयास करें, उन्हें श्वेत वस्त्र पहनाकर संघ से बहिष्कृत किया जाए। मेरी इच्छा है कि संघ समग्र होकर चिरस्थायी बने।'

लगता है कि उस समय संघ में कुछ ऐसे लोग प्रवेश पा लिये थे जिससे संघ में अव्यवस्था उत्पन्न हो गई थी। संघ की सुचारु कार्यवाही के लिए ऐसे अवांछनीय तत्त्वों का संघ से निष्कासन अनिवार्य था। संघ ने

अशोक से सहायता की याचना की तो उसने यह कार्रवाई की। इस प्रकार की सहायता तो वह किसी भी ऐसे संस्थान को दे सकता है जो बाहरी व्यक्तियों से आक्रांत होती।

वस्तुत: अशोक आजीवन उपासक ही रहा और वह भिक्षु अथवा संघ का अध्यक्ष कभी नहीं रहा। महावंस से पता चलता है कि अभिषेक के अठारहवें वर्ष अशोक ने लंका के राजा के पास एक संदेश भिजवाया था कि 'वह शाक्यपुत्र (गौतम बुद्ध) के धर्म का साधारण उपासक बन गया है।' इस प्रकार कोई ऐसा प्रमाण नहीं है कि अशोक ने संन्यास ग्रहण किया हो। सच तो यह है कि प्राचीन भारत में किसी ऐसे राजा का असंदिग्ध रूप से उल्लेख नहीं मिलता है जो एक ही समय भिक्षु भी हो और राजा के सभी विशेषाधिकारों का भी उपयोग करता रहे।

यद्यपि अशोक ने व्यक्तिगत रूप से बौद्ध धर्म अपना लिया था और वह पूर्णरूप से आश्वस्त हो गया था कि 'जो कुछ भगवान् बुद्ध ने कहा है, वह शब्दश: सत्य है', किंतु वह दूसरे धर्मों और संप्रदायों के प्रति उदार तथा सहिष्णु बना रहा। सातवें शिलालेख में वह अपनी धार्मिक इच्छा व्यक्त करते हुए कहता है कि 'सभी धर्मों को मानने वाले सभी स्थलों पर रहें क्योंकि वे सभी आत्म-संयम एवं हृदय की पवित्राता चाहते हैं।' बारहवें शिलालेख में वह विभिन्न धर्मों के प्रति अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है कि 'मानव को अपने धर्म का आदर और दूसरे धर्म की अकारण निंदा नहीं करनी चाहिए। ऐसा करके मानव अपने संप्रदाय की वृद्धि करता है तथा दूसरे संप्रदाय का उपकार करता है। इसके विपरीत वह अपने संप्रदाय को हानि पहुँचाता है और दूसरे संप्रदाय का अपकार करता है।...लोग एक दूसरे के धम्म को सुनें। इससे सभी संप्रदाय बहुश्रुत होंगे तथा विश्व का कल्याण होगा।' इससे स्पष्ट है कि अशोक ने जान लिया था कि विभिन्न मतों की संकीर्ण बुद्धि ही विवाद का कारण है, इसलिए सभी को उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए।

राजतरंगिणी से पता चलता है कि अशोक ने कश्मीर में विजयेश्वर नामक शिव के मंदिर का निर्माण करवाया था जिसके भीतर दो समाधियाँ निर्मित की गई थीं। उसने अपने शिलालेखों में ब्राह्मणों, निर्ग्रंथों के साथ-साथ आजीवकों का भी उल्लेख किया है। अपने राज्याभिषेक के बारहवें वर्ष उसने बराबर पहाड़ी पर आजीवक संप्रदाय के भिक्षुओं के निवास के लिए दो गुफाओं का निर्माण करवा कर दान दिया था जो बौद्धेतर संप्रदायों के प्रति अशोक की उदारता और सहिष्णुता के सबल प्रमाण हैं।

अशोक का धम्म

संसार के इतिहास में अशोक इसलिए विख्यात है कि उसने निरंतर मानव की नैतिक उन्नति के लिए प्रयास किया। जिन सिद्धांतों के पालन से यह नैतिक उत्थान संभव था, अशोक के लेखों में उन्हें 'धम्म' कहा गया है। धम्म संस्कृत के धर्म का प्राकृत रूपान्तर है, किंतु अशोक ने इसका विशिष्ट अर्थ में प्रयोग किया है। दूसरे तथा सातवें स्तंभ-लेखों में अशोक ने धम्म के उन गुणों की गणना की है, जो धम्म का निर्माण करते हैं- 'अपासिनवे बहुकयाने दया दाने सचे सोचये मादवे सादवे च' अर्थात् धम्म है साधुता, बहुत से कल्याणकारी अच्छे कार्य करना, पापरहित होना, मृदुता, दूसरों के प्रति व्यवहार में मधुरता, दया-दान तथा शुचिता।

इन गुणों को व्यवहार में लाने के लिए ब्रह्मगिरि लघुशिलालेख में कहा गया है कि, 'अनारम्भो प्राणानाम् अविहिंसाभूतानाम् मातरिपितरि सुश्रुषा थेर सुश्रुषा गुरुणाम् अपचिति मित संस्तुत नाटिकानां बहमण-समणानां। दानं संपटिपति दास-भतकम्हि सम्य प्रतिपति अपव्वयता अपभांडता' अर्थात् प्राणियों का वध न करना, जीव-हिंसा न करना, माता-पिता तथा बड़ों की आज्ञा मानना, गुरुजनों के प्रति आदर, मित्र, परिचितों, संबंधियों, ब्राह्मण तथा श्रमणों के प्रति दानशीलता तथा उचित व्यवहार और दास तथा भृत्यों के प्रति उचित व्यवहार ही धम्म है।

ब्रह्मगिरि शिलालेख में इन गुणों के अतिरिक्त शिष्य द्वारा गुरु का आदर और अपने जाति-भाइयों के प्रति उचित व्यवहार भी धम्म के अंतर्गत माना गया है। अशोक के अनुसार यह पुरानी परंपरा (पोराण पोकति) है। तीसरे शिलालेख में अशोक ने 'अल्प-व्यय' तथा 'अल्प-संग्रह' को भी धम्म का अंग बताया है। चतुर्थ शिलालेख में अशोक कहता है कि 'धर्मानुशासन से प्राणियों में अहिंसा, जीवरक्षा, बंधुओं का आदर, ब्राह्मण-श्रमणों का सत्कार, माता-पिता की सेवा तथा वृद्धों की सेवा में वृद्धि हुई है।' सप्तम शिलालेख में वह संयम, चित्त-शुद्धि, कृतज्ञता, तथा दृढ़-भक्ति पर भी बल देता है। इस प्रकार अशोक ने धम्म के विधेयात्मक पक्षों पर विशेष बल दिया है और इसे धर्मानुशासन के लिए आवश्यक बताया है।

अशोक ने धम्म के विधायक पक्ष के साथ-साथ उसके निषेधात्मक पक्ष (आसिनव) की भी व्याख्या की है जिसके अंतर्गत कुछ ऐसे दुर्गुणों की गणना की गई है, जो मानव की आध्यात्मिक उन्नति में बाधक हैं। इन्हें 'आसिनव' शब्द से व्यक्त किया गया है। तीसरे शिलालेख में अशोक ने आसिनव को 'पाप' कहा है। इन्हीं आसिनव के कारण मानव सद्गुणों से विचलित हो जाता है। धम्म की प्रगति में बाधक आसिनव (पाप) हैं- 'आसिनव गामीनि नाम अथ चंडिये निठुलिए कोधे माने इस्सा..' अर्थात् प्रचंडता, निष्ठुरता, क्रोध, मान और ईर्ष्या पाप (आसिनव) के लक्षण हैं। इसलिए प्रत्येक मानव को आसिनव से बचना चाहिए।

अशोक मानवमात्र की दुर्बलताओं से परिचित था। वह जानता था कि धम्म का पूर्ण परिपालन तभी संभव है, जब मानव उसके गुणों के साथ ही साथ आसिनव से अपने आपको मुक्त रखे। इसके लिए अशोक ने नित्य 'आत्म-निरीक्षण' पर बल दिया है। तृतीय स्तंभ-लेख में वह कहता है कि यह मानव का स्वभाव है कि वह सदैव अपने द्वारा किये गये अच्छे कार्यों को ही देखता है, वह यह कभी नहीं देखता कि मैंने यह पाप किया है या यह दोष मुझमें है। मानव को सदैव आत्म-निरीक्षण करते रहना चाहिए ताकि उसे अधःपतन की ओर ले जाने वाली बुराइयों का ज्ञान हो सके। मानव को सचेत रहना चाहिए कि ये मनोवेग- चंडता, निष्ठुरता, क्रोध, ईर्ष्या और मान व्यक्ति को पाप की ओर न ले जायें और उसे भ्रष्ट न करें। तभी धम्म की भावना का विकास हो सकता है।

धम्म के पूर्ण परिपालन के लिए आसिनव से बचना तथा आत्म-निरीक्षण ही पर्याप्त नहीं था। अशोक ने साधारण जनमानस में धम्म को लोकप्रिय बनाने के लिए धम्म की तुलना भौतिक जीवन के विभिन्न आचरणों से की है और उनमें धम्म को सर्वश्रेष्ठ घोषित किया है। नवें शिलालेख में उसने मानव जीवन के विभिन्न अवसरों पर किये जानेवाले 'मंगलों' का उल्लेख किया है और उन्हें 'अल्पफलवाला' बताया है। उसके अनुसार धम्म मंगल 'महाफलवाला' है। ग्यारहवें शिलालेख में धम्मदान की तुलना सामान्य दान से की गई है तथा धम्मदान को श्रेष्ठतर बताया गया है (नास्ति एदिशं दनं यदिशं धम दन)। धम्मदान का आशय है- धम्म का उपदेश देना, धम्म में भाग लेना तथा अपने को धम्म से संबंधित कर लेना। इसी प्रकार अशोक तेरहवें शिलालेख में सैनिक विजय की तुलना धम्म विजय से करता है। उसके अनुसार प्रत्येक सैनिक विजय में घृणा, हिंसा और हत्या की घटनाएँ होती हैं। इसके विपरीत धम्म विजय प्रेम, दया, मृदुता एवं उदारता आदि से अनुप्राणित होती है।

धम्म का स्वरूप

अशोक के धम्म के वास्तविक स्वरूप को लेकर विद्वानों ने भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किया है। प्रसिद्ध विद्वान् फ्लीट के अनुसार अशोक का धम्म बौद्ध धर्म नहीं था क्योंकि इसमें बुद्ध का उल्लेख नहीं किया गया

है। वस्तुतः इसका उद्देश्य बौद्ध या किसी अन्य संप्रदाय का प्रचार-प्रसार नहीं था। यह एक प्रकार से एक आदर्श शासक की राजकीय आज्ञाएं थीं जिनके अनुसार उन्हें आचरण करना था। फ्लीट के अनुसार अशोक का धर्म राजधर्म था जिसका विधान उसने अपने राजकर्मचारियों के पालनार्थ किया था। किंतु अशोक का धम्म मात्र अशोक या राजदरबार की चहारदीवारी तक सीमित न रहकर विश्वजनीन बना और जन-जन के अंतर्मन में अपना अमिट प्रभाव डालने में सफल रहा, इसलिए इसे राजधर्म नहीं माना जा सकता है।

स्मिथ के अनुसार अशोक ने उपदेश की शक्ति में आश्चर्यजनक श्रद्धा रखते हुए जिस धम्म का अनवरत प्रचार-प्रसार किया, उसमें विभेदमूलक विशेषताएँ बहुत कम थीं। यह सिद्धांत आवश्यक रूप से सभी धर्मों में विद्यमान था, यद्यपि कोई संप्रदाय इसके किसी एक अंग पर ही बल देता था। राधाकुमुद मुकर्जी के अनुसार अशोक के लेखों में जिस धर्म के तत्त्व हैं, वह कोई धर्म विशेष नहीं है। वह एक आचरण-संहिता मात्र है जिसमें सभी धर्मों का सार है। अशोक का व्यक्तिगत धर्म बौद्ध धर्म था तथा उसने साधारण जनता के लिए जिस धर्म का विधान किया, वह वस्तुतः सभी धर्मों का सार था।[56] मैकफेल लिखते हैं कि अशोक के उत्कीर्ण लेखों में धम्म का अभिप्राय बौद्ध धर्म से न होकर उस सामान्य शुचिता से है जिसका पालन अशोक अपनी समस्त प्रजा से करवाना चाहता था, चाहे वह प्रजा किसी भी धर्म को माननेवाली हो।

रमाशंकर त्रिपाठी के अनुसार अशोक के धम्म के तत्त्व विश्वजनीन हैं और उस पर किसी धर्म-विशेष को प्रोत्साहन अथवा संरक्षण प्रदान करने का दोषारोपण नहीं किया जा सकता है। इसके विपरीत सेनार्ट का मानना है कि अशोक के लेखों में उस समय के बौद्ध धर्म का पूर्ण एवं सर्वांगीण चित्रण है जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उसके समय तक बौद्ध धर्म एक शुद्ध नैतिक सिद्धांत था और उसमें किसी विशेष धार्मिक सिद्धांतों की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता था। टॉमस जैसे इतिहासकार अशोक के धम्म को बौद्ध धर्म नहीं स्वीकार करते, क्योंकि इसमें बौद्ध धर्म के विहित सिद्धांत, जैसे- चार आर्यसत्य, अष्टांगिक मार्ग तथा निर्वाण आदि का उल्लेख नहीं मिलता है।

भंडारकर के अनुसार अशोक का धम्म एक प्रकार का उपासक बौद्ध धर्म था। यद्यपि यह सही है कि अशोक बौद्ध था और उसके धम्म पर बौद्ध धर्म का कुछ प्रभाव पड़ा था, किंतु उसके धम्म को पूर्णतया बौद्ध धर्म नहीं माना जा सकता है।

रोमिला थापर के अनुसार अशोक का धम्म अशोक की अपनी खोज थी। हो सकता है उसे हिंदू तथा बौद्ध चिंतन से लिया गया हो, किंतु अपने सार में यह सम्राट द्वारा पथ-प्रदर्शन का एक ऐसा प्रयास था जो व्यावहारिक और सहज होने के साथ-साथ बहुत नैतिक था। इसका उद्देश्य उन लोगों के बीच सुखद समन्वय स्थापित करना था जिनके पास दार्शनिक चिंतन में उलझने का अवकाश ही नहीं था। यदि उसकी नीति बौद्ध धर्म के सिद्धांतों की पुनरावृत्ति होती तो वह इसे अवश्य स्पष्ट रूप से स्वीकार करता।

इस प्रकार अशोक के धम्म के संबंध में दो प्रकार की धारणाएँ हैं- एक धारणा के अनुसार अशोक का धम्म बौद्ध धर्म से पूर्णतया प्रभावित था तथा उसी का परिवर्तित रूप था और दूसरी के अनुसार अशोक के धम्म में सभी धर्मों का सार निहित था तथा यह एक प्रकार की आचार-संहिता थी। डी.आर. भंडारकर का विचार है कि अशोक जिस धर्म का प्रचार करता था, वह सभी धर्मों में सामान्य रूप से विद्यमान साधारण कर्त्तव्यों का संग्रह नहीं था, अपितु बौद्ध धर्म द्वारा उपासक के लिए निर्धारित धार्मिक कर्त्तव्यों का संग्रह था। अशोक ने जिस धम्म का प्रचार किया, वह बौद्ध धर्म था और इस धम्म की मूल प्रेरणा बौद्ध धर्म से मिली थी।

अशोक के समय बौद्ध धर्म के दो रूप थे- एक तो भिक्षु बौद्ध धर्म और दूसरा उपासक बौद्ध धर्म। उपासक बौद्ध धर्म सामान्य गृहस्थों के लिए था और गृहस्थ होने के कारण अशोक ने इसी दूसरे रूप को ग्रहण किया। अशोक के धम्म तथा बौद्ध ग्रंथों में उल्लिखित उपासक बौद्ध धर्म के तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट है कि अशोक ने धम्म के जिन गुणों का निर्देश किया है, वे पूर्ण रूप से बौद्ध ग्रंथ दीघनिकाय के लक्खणसुत्त

चक्कवत्ती सीहनाद सुत्त, राहुलोवादसुत्त तथा धम्मपद से ली गई हैं। इन ग्रंथों में वर्णित धर्मराज के आदर्श से प्रेरित होकर ही अशोक ने धम्म-विजय के आदर्श को अपनाया। लक्खणसुत्त तथा चक्कवत्ती सीहनादसुत्त में धम्मयुक्त चक्रवर्ती सम्राट के विषय में कहा गया है कि वह भौतिक तथा आध्यात्मिक कल्याण के लिए प्रयत्नशील रहता है। ऐसा राजा विजय से नहीं, अपितु धम्म से विजयी होता है, वह तलवार के बजाय धम्म से विजय प्राप्त करता है, वह लोगों को अहिंसा का उपदेश देता है। अशोक ने धम्म की जो परिभाषा दी है, वह राहुलोवादसुत्त से ली गई है। इस सुत्त को 'गिहिविनय' भी कहा गया है अर्थात् ग्रहस्थों के लिए अनुशासन-ग्रंथ। इसमें भी माता-पिता की सेवा, गुरुओं का सम्मान, मित्रों, संबंधियों, परिचितों तथा ब्राह्मणों-श्रमणों के साथ उदारता और दास-भृत्यों के साथ उचित व्यवहार करने का उपदेश दिया गया है। अशोक ने धम्म पालन से प्राप्त होनेवाले जिन स्वर्गीय सुखों का का उल्लेख किया है उनका विवरण पालि ग्रंथ विमानवत्थु में मिलता है। उपासक के लिए परम उद्देश्य स्वर्ग प्राप्त करना था, न कि निर्वाण। चक्कवत्ती (चक्रवर्ती) धम्मराज के आदर्श को अपनाते हुए अशोक ने जनसाधारण के नैतिक उत्थान के लिए अपने धम्म का प्रचार किया, ताकि वे ऐहिक सुख और इस जन्म के बाद पारलौकिक सुख प्राप्त कर सकें। इस प्रकार भंडारकर अशोक के धम्म को उपासक बौद्ध धर्म कहते हैं। अशोक सच्चे हृदय से अपनी प्रजा का नैतिक पुनरुद्धार करना चाहता था और इसके लिए वह निरंतर प्रयत्नशील रहा। वह निःसंदेह, एक आदर्श को चरितार्थ करना चाहता था और यही अशोक की मौलिकता है।

अशोक के धम्म के सिद्धांतों का अनुशीलन करने से कोई संदेह नहीं रह जाता कि अशोक का धम्म एक सर्वसाधारण धर्म है, जिसकी मूलभूत मान्यताएँ सभी संप्रदायों में मान्य हैं और जो देश-काल की सीमाओं में आबद्ध नहीं हैं। किसी पाखंड या संप्रदाय का इससे विरोध नहीं हो सकता। अशोक ने अपने तेरहवें शिलालेख में लिखा है- ब्राह्मण, श्रमण और गृहस्थ सर्वत्रा रहते हैं और धर्म के इन आचरणों का पालन करते हैं। अशोक के साम्राज्य में अनेक संप्रदाय के माननेवाले थे और हो सकता है कि उनमें थोड़ा-बहुत विरोध तथा प्रतिद्वंद्विता का भाव भी रहा हो। उसने सभी संप्रदायों में सामंजस्य स्थापित करने के लिए सदाचार के इन नियमों पर जोर दिया। अपने बारहवें शिलालेख में अशोक ने धर्म की सार-वृद्धि पर जोर दिया है, अर्थात् एक धर्म-संप्रदायवाले दूसरे धर्म-संप्रदाय के सिद्धांतों के विषय में जानकारी प्राप्त करें, इससे धर्मसार की वृद्धि होगी।

धम्म का उद्देश्य

तेरहवें शिलालेख और लघु शिलालेख से विदित होता है कि अशोक के धर्म परिवर्तन का कलिंग युद्ध से निकट संबंध है। अशोक के धम्म के संबंध में रोमिला थापर ने लिखा है कि कुछ राजनीतिक उद्देश्यों से ही अशोक ने एक नये धर्म की कल्पना की तथा इसका प्रसार किया। चंद्रगुप्त मौर्य के समय शासन के केंद्रीकरण की नीति सफलतापूर्वक पूरी हो चुकी थी। कुशल अधिकारी-तंत्र, उत्तम संचार-व्यवस्था और शक्तिशाली शासक के द्वारा उस समय साम्राज्य का जितना केंद्रीकरण संभव था, वह हो चुका था। किंतु केंद्र का आधिपत्य बनाये रखने के मात्र दो उपाय थे, एक तो सैनिक शक्ति द्वारा कठोर शासन तथा राजा में देवत्व का आरोपण कर और दूसरे, सभी वर्गों से संकलित सारग्राही धर्म को अपनाकर। यह दूसरा तरीका अधिक युक्तिसंगत था क्योंकि ऐसा करने से किसी एक वर्ग का प्रभाव कम किया जा सकता था और फलतः केंद्र का प्रभाव बढ़ता। अशोक पहला सम्राट था जिसने भावनात्मक एकता के महत्त्व को समझा और उसको प्राप्त करने के लिए धम्म का प्रचार किया। इस प्रकार थापर के अनुसार अशोक ने धम्म को सामाजिक उत्तरदायित्व की एक वृत्ति के रूप में देखा था। इसका उद्देश्य एक ऐसी मानसिक वृत्ति का निर्माण करना था जिसमें सामाजिक उत्तरदायित्वों को, एक व्यक्ति के दूसरे के प्रति व्यवहार को अधिक महत्त्वपूर्ण समझा जाए। इसमें मनुष्य की महिमा को स्वीकृति देने और समाज के कार्य-कलापों में मानवीय भावना का संचार करने का आग्रह था। सिंहासनारूढ़ होने के समय अशोक बौद्ध नहीं था। बाद में ही उसकी बौद्ध धर्म में रुचि बढ़ी, क्योंकि उत्तराधिकार युद्ध के समय उसे संभवतः कट्टर समुदायों का समर्थन नहीं मिला। अतः बौद्ध धर्म को

स्पष्ट रूप में समर्थन देकर उसने उन वर्गों का समर्थन प्राप्त किया, जो कट्टर नहीं थे। रोमिला थापर का अनुमान है कि बौद्ध और आजीविकों को नवोदित वैश्य वर्ग का समर्थन प्राप्त था और जनसाधारण का इन संप्रदायों से तीव्र विरोध नहीं था। इस प्रकार अशोक ने धर्म को अपनाने में व्यावहारिक लाभ देखा।

इस धम्म की कल्पना का दूसरा कारण था- छोटी-छोटी राजनीतिक इकाइयों में बँटे साम्राज्य के विभिन्न वर्गों, जातियों और संस्कृतियों को एक सूत्र में बाँधना। इनके साथ-साथ विभिन्न प्रदेशों में सत्ता को दृढ़ करने के लिए यह उपयोग में लाया जा सकता था। किंतु बौद्ध अनुश्रुतियों और अशोक के अभिलेखों से यह सिद्ध नहीं होता कि उसने किसी राजनीतिक लाभ के उद्देश्य से धम्म का प्रचार किया था। वस्तुतः अशोक सच्चे हृदय से अपनी प्रजा का भौतिक तथा नैतिक कल्याण करना चाहता था और इसी उद्देश्य से उसने अपनी धम्मनीति का विधान किया।

रोमिला थापर जैसे इतिहासकारों का विचार है कि अशोक की धम्मनीति सफल नहीं रही। सामाजिक तनाव ज्यों के त्यों बने रहे, सांप्रदायिक संघर्ष होते रहे। किंतु इस मत से सहमत होना कठिन है क्योंकि अशोक के काल में किसी सांप्रदायिक संघर्ष की सूचना नहीं है। वस्तुतः अशोक की उदार धार्मिक नीति के कारण ही विशाल साम्राज्य में समरसता आई और आपसी भाईचारा का विकास हुआ। नीलकंठ शास्त्री उचित ही लिखते हैं कि अकबर के पूर्व अशोक पहला शासक था जिसने भारतीय राष्ट्र की एकता की समस्या का सामना किया जिसमें उसे अकबर से अधिक सफलता प्राप्त हुई क्योंकि उसे मानव-प्रकृति का बेहतर ज्ञान था। उसने एक नया धर्म बनाने या अपने धर्म को बलात् स्वीकार कराने के स्थान पर एक सुस्थित धर्म व्यवस्था को स्वीकार किया जिससे स्वस्थ एवं सुव्यवस्थित विकास की आशा थी। वह सहिष्णुता के मार्ग से कभी विचलित नहीं हुआ।

कुछ इतिहासकारों का मत है कि अशोक की धार्मिक नीति के कारण भारत का राजनीतिक विकास अवरुद्ध हुआ, जबकि उस समय रोमन साम्राज्य के समान विशाल भारतीय साम्राज्य को स्थापित किया जा सकता था। धम्म-विजय की नीति से दिग्विजयी मौर्य सेना निष्क्रिय हो गई और विदेशी आक्रमणों का सामना नहीं कर सकी। इस नीति ने देश को भौतिक समृद्धि से विमुख कर दिया जिससे देश में राष्ट्रीयता की भावनाओं का विकास अवरुद्ध हुआ। जो भी हो, अशोक की इसी नीति के कारण अन्य देशों में भारतीयता का प्रचार संभव हो सका, घृणा के स्थान पर सहृदयता विकसित हुई, सहिष्णुता और उदारता को बल मिला तथा बर्बरता के कृत्यों से भरे हुए इतिहास को एक नई दिशा का बोध हुआ। लोकहित की दृष्टि से अशोक ही अपने समकालीन इतिहास का ऐसा शासक है जिसने मानव-मात्र की नहीं, वरन् प्राणि-मात्र की चिंता की। वस्तुतः अशोक अपने काल का एकमात्र ऐसा सम्राट है, जिसकी प्रशस्ति उसके गुणों के कारण होती आई है, उसकी शक्ति के भय से नहीं।

धम्म प्रचार के उपाय

लेखों से पता चलता है कि बौद्ध धर्म ग्रहण करने के एक वर्ष बाद तक अशोक एक साधारण उपासक बना रहा। इसके बाद वह संघ की शरण में आया और एक वर्ष से अधिक समय तक वह संघ के साथ रहा। इस बीच अशोक ने धम्म प्रचार के लिए बड़ी लगन और उत्साह से काम किया जिससे बौद्ध धर्म की आश्चर्यजनक उन्नति हुई। उसने धम्मप्रचार के लिए अपने साम्राज्य के सभी साधनों को नियोजित कर दिया। उसके द्वारा किये गये कुछ उपाय अत्यंत मौलिक थे, जैसे-अहिंसा के प्रचार के लिए अशोक ने युद्ध बंद कर दिया। जीवों का वध रोकने के लिए उसने प्रथम शिलालेख में विज्ञप्ति जारी की कि किसी यज्ञ के लिए पशुओं का वध न किया जाए। संभवतः यह निषेध मात्र राजभवन या फिर पाटलिपुत्र के लिए ही था, समस्त साम्राज्य के लिए नहीं, क्योंकि पशु-वध को एकदम रोकना असंभव था। अशोक ने लिखा है कि राजकीय रसोई में पहले जहाँ सैकड़ों-हजारों पशु भोजन के लिए मारे जाते थे, वहाँ अब केवल तीन प्राणी, दो मोर और

एक मृग मारे जाते हैं, और भविष्य में वे भी नहीं मारे जायेंगे। अशोक ने यह भी घोषणा की कि ऐसे सामाजिक उत्सव नहीं होने चाहिए, जिनमें अनियंत्रित आमोद-प्रमोद हो, जैसे-सुरापान, माँस-भक्षण, मल्लयुद्ध, जानवरों की लड़ाई आदि। इनके स्थान पर अशोक ने धम्म-सभाओं की व्यवस्था की, जिनमें विमान, हाथी, अग्नि-स्कंध इत्यादि स्वर्ग की झाँकियाँ दिखाई जाती थी और इस प्रकार जनता में धम्म के प्रति अनुराग पैदा किया जाता था। बिहार-यात्राओं को बंदकर अशोक ने उनके स्थान पर धम्म-यात्राओं को आरंभ किया, जिससे सामान्य जनता में धर्म का प्रसार हुआ।

1. बौद्ध तीर्थ स्थानों की यात्रा

धम्म प्रचार के लिए अशोक ने बिहार-यात्राओं के स्थान पर धम्म-यात्राओं को प्रारंभ किया और अनेक बौद्ध तीर्थस्थानों की यात्रा की। अपने अभिषेक के दसवें वर्ष उसने बोधगया की यात्रा की। यह उसकी पहली धम्म-यात्रा थी। इसके पूर्व वह अन्य शासकों की भाँति बिहार-यात्राओं पर जाया करता था। चौदहवें वर्ष वह नेपाल की तराई में स्थित निग्लीवा (निगाली सागर) गया और कनकमुनि बुद्ध के स्तूप को द्विगुणित करवाया। अपने अभिषेक के बीसवें वर्ष अशोक बुद्ध के जन्मस्थल लुंबिनी गाँव गया, वहाँ एक शिला-स्तंभ स्थापित करवाया और बुद्ध का जन्मस्थल होने के कारण वहाँ का कर घटाकर 1/8 कर दिया। इन यात्राओं के अवसर पर अशोक ब्राह्मणों और श्रमणों को दान देता था, वृद्धों को सुवर्ण दान देता था, जनपद के लोगों से धर्म संबंधी प्रश्नादि करता था। इन धर्म यात्राओं से अशोक को देश के विभिन्न भागों के लोगों के संपर्क में आने का और धर्म तथा शासन के विषय में लोगों के विचारों से अवगत होने का अवसर मिला। साथ ही, इन यात्राओं से एक प्रकार से स्थानीय शासकों पर नियंत्रण भी बना रहा।

2. राजकीय पदाधिकारियों की नियुक्ति

अशोक ने अपने विशाल साम्राज्य में धर्म प्रचार के लिए अपने साम्राज्य के पदाधिकरियों को लगा दिया। तीसरे व सातवें स्तंभलेख से ज्ञात होता है कि उसने व्युष्ट, रज्जुक, प्रादेशिक तथा युक्त नामक पदाधिकारियों को जनता के बीच जाकर धर्म का प्रचार एवं उपदेश करने का आदेश दिया। ये अधिकारी प्रति पाँचवें वर्ष अपने-अपने क्षेत्रों में भ्रमण पर जाया करते थे और सामान्य प्रशासकीय कार्यों के साथ-साथ धर्म का प्रचार भी करते थे। अशोक के लेखों में इसे 'अनुसंधान' कहा गया है।

3. धर्मश्रावन तथा धर्मोपदेश की व्यवस्था

धर्म प्रचार के लिए अशोक ने अपने साम्राज्य में धर्मश्रावन (धम्म सावन) तथा धर्मोपदेश (धम्मानुसथि) की व्यवस्था की। उसके अधिकारी विभिन्न स्थानों पर घूम-घूमकर लोगों को धर्म के विषय में शिक्षा देते और राजा की ओर से की गई धर्म-संबंधी घोषणाओं से अवगत कराते थे।

4. धर्म-महामात्रों की नियुक्ति

अपने अभिषेक के तेरहवें वर्ष अशोक ने धर्म प्रचार के लिए 'धम्ममहामात्त' नामक नवीन पदाधिकारियों

की नियुक्ति की। पाँचवें शिलालेख में अशोक कहता है कि प्राचीनकाल में धम्ममहामात्त कभी नियुक्त नहीं हुए थे। मैंने अभिषेक के तेरहवें वर्ष धम्ममहामात्त नियुक्त किये हैं। इन अधिकारियों का कार्य विभिन्न धार्मिक संप्रदायों के बीच द्वेष-भाव को समाप्त कर धर्म की एकता पर बल देना था। इनका प्रमुख कर्तव्य धर्म की रक्षा और धर्म की वृद्धि (धम्माधिथानाये) करना बताया गया है। वे राजपरिवार के सदस्यों एवं राजा से प्राप्त धनादि को धर्म-प्रचार के कार्य में नियोजित करते थे। इस प्रकार धर्म-महामात्रों की नियुक्ति से धर्म की वृद्धि हुई।

5. दिव्य रूपों का प्रदर्शन

अशोक पारलौकिक जीवन में विश्वास करता था। उसने प्रजा में धर्म को लोकप्रिय बनाने के लिए जनता के बीच उन स्वर्गिक सुखों का प्रदर्शन करवाया, जो मानव को देवत्व प्राप्त करने पर स्वर्ग में मिलते हैं। विमान, हस्ति, अग्नि-स्कंध आदि दिव्य-रूपों के प्रदर्शन किये गये। इन दिव्य-प्रदर्शनों से जहाँ एक ओर जनता का मनोरंजन होता था, वहीं दूसरी ओर पारलौकिक सुखों की लालसा से वह धर्म की ओर आकृष्ट हुई।

6. लोकोपकारिता के कार्य

धर्म को लोकप्रिय बनाने के लिए अशोक द्वारा मानव एवं पशु दोनों के कल्याण के लिए कार्य किये गये। उसने अपने राज्य में मानव एवं पशुओं के लिए चिकित्सा की अलग-अलग व्यवस्था करवाई और आवश्यक औषधियों को विदेशों से भी मँगवाया। सातवें स्तंभ-लेख से पता चलता है कि मानव और पशुओं को छाया देने के लिए मार्गों पर वट-वृक्षों एवं आम्रवाटिकाएँ लगवाई गईं, आधे-आधे कोस की दूरी पर कुएं खुदवाये गये, विश्रामगृह बनवाये गये और मानव तथा पशुओं के उपयोग के लिए स्थान-स्थान पर प्याउ चलाये गये। ऐसा इसलिए किया गया कि ताकि लोग धर्म के अनुसार आचरण करें। बौद्ध ग्रंथ अंगुत्तनिकाय में भी वृक्षारोपण, पुल निर्माण, कुएं खुदवाने तथा प्याउ चलवाने को पुण्य कार्य बताया गया है जिसके द्वारा मानव स्वर्गलोक को प्राप्त कर सकता है। अशोक के इन लोकोपकारी कार्यों से जनमानस का धम्म की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक था।

7. धम्म-लिपियों को खुदवाना

धर्म प्रचार के लिए अशोक ने अपने सिद्धांतों को विभिन्न शिलाओं एवं स्तंभ-लेखों पर उत्कीर्ण कराया, जो उसके साम्राज्य के विभिन्न भागों में प्रसरित थे। पाषाण पर खुदे होने के कारण ये लेख स्थायी सिद्ध हुए और और आनेवाली पीढ़ी अपनी प्रजा के नैतिक व भौतिक कल्याण हेतु उनका अनुकरण कर सकी। इन लेखों में धम्मोपदेश जन-सामान्य की भाषा पालि में लिखे गये थे। निश्चित रूप से इन पाषाण-लेखों से धर्म के प्रसार में सहायता मिली होगी।

8. विदेशों में धर्म-प्रचारकों को भेजना

अशोक ने धम्म-प्रचार के लिए विदेशों में भी प्रचारकों को भेजा। अपने दूसरे तथा तेरहवें शिलालेख में उसने उन देशों की गणना की है, जहाँ उसने अपने दूतों को भेजा था। इनमें दक्षिणी सीमा पर स्थित राज्य चोल, पांडय, सतियपुत्त, केरलपुत्त एवं ताम्रपर्णि बताये गये हैं। तेरहवें शिलालेख से पता चलता है कि उसने पाँच यवन राज्यों में अपने धर्म-प्रचारकों को भेजा था। इसी शिलालेख में अशोक बताता है कि, 'जहाँ देवताओं के प्रिय के दूत नहीं पहुँचते, वहाँ के लोग भी धर्मानुशासन, धर्म-विधान तथा धर्म-प्रचार की प्रसिद्धि सुनकर उसका अनुसरण करते हैं।' संभवत: ऐसे स्थानों से तात्पर्य चीन एवं बर्मा से है।

रिज डेविड्स इस तथ्य को नहीं मानते कि अशोक के दूत कभी यवन राज्य में गये थे। उनके अनुसार यदि अशोक के धर्म-प्रचारक इन राज्यों में गये भी हों, तो भी, उन्हें वहाँ कोई सफलता नहीं मिली क्योंकि यूनानी अपने धर्म से अधिक संतुष्ट थे और इस प्रकार वे किसी भारतीय धर्म को ग्रहण नहीं कर सकते थे। अशोक अपने अभिलेखों में इन राज्यों में धर्म-प्रचारक भेजने का जो दावा करता है, वह मिथ्या एवं राजकीय प्रलाप से परिपूर्ण है। यह कदापि संभव नहीं है कि एक विदेशी राजा के कहने से उन्होंने अपने

देवताओं तथा अंधविश्वासों को त्याग दिया होगा। अशोक के धर्म-प्रचारक केवल भारतीय सीमा में ही रहे।

किंतु अशोक जैसे मानवतावादी शासक पर मिथ्याचार का आरोप लगाना उचित नहीं लगता है। अशोक का उद्देश्य अपने धर्म-प्रचारकों के माध्यम से यूनानी जनता को बौद्ध धर्म में दीक्षित करना नहीं था। वह तो वहाँ रह रहे भारतीय राजनयिकों एवं पदाधिकारियों को आदेश देना चाहता था कि वे धर्म के प्रचार का कार्य आरंभ कर दें और उन राज्यों में लोकोपयोगी कार्य, जैसे- मानव एवं पशुओं के लिए औषधालयों की स्थापना आदि करें। भारतीय इतिहास में इस बात के प्रमाण हैं कि मिनेंडर एवं हेलियोडोरस जैसे यवनों ने अपनी प्राचीन संस्कृति को त्यागकर भारतीय संस्कृति को अपना लिया था। मिस्री नरेश टाल्मी फिलाडेल्फ ने सिकंदरिया में एक विशाल पुस्तकालय की स्थापना की थी, जिसका उद्देश्य भारतीय ग्रंथों के अनुवाद को सुरक्षित रखना था। इस प्रकार यदि अशोक के धर्म-प्रचार की ख्याति सुनकर कुछ यवन बौद्ध हो गये हों, तो आश्चर्य नहीं होना चाहिए।

सिंहली अनुश्रुतियों- दीपवंस एवं महावंस के अनुसार अशोक के शासनकाल में पाटलिपुत्र में मोग्गलिपुत्ततिस्स की अध्यक्षता में चतुर्थ बौद्ध संगीति का आयोजन हुआ। इस संगीति की समाप्ति के बाद विभिन्न देशों में बौद्ध धर्म के प्रचारार्थ भिक्षु भेजे गये। महावंस के अनुसार कश्मीर तथा गांधार में मज्झंतिक, यवन देश में महारक्षित, हिमालय देश में मज्झिम, अपरान्तक में धर्मरक्षित, महाराष्ट्र में महाधर्मरक्षित, महिषमंडल (मैसूर अथवा मंधाता) में महादेव, बनवासी (उत्तरी कन्नड़) में रक्षित, सुवर्णभूमि में सोन तथा उत्तर और लंका में महेन्द्र तथा संघमित्रा को धर्म-प्रचार के लिए भेजा गया। लंका में बौद्ध धर्म-प्रचारकों को अधिक सफलता मिली जहाँ अशोक के पुत्र महेन्द्र ने वहाँ के शासक तिस्स को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया। तिस्स ने संभवतः इसे राजधर्म बना लिया और अशोक का अनुकरण करते हुए 'देवानाम् प्रिय' की उपाधि धारण की।

इस प्रकार अशोक ने विविध उपायों द्वारा स्वदेश और विदेश में बौद्ध धर्म का प्रचार किया। अशोक के प्रयासों के परिणामस्वरूप बौद्ध धर्म भारतीय सीमा का अतिक्रमण कर एशिया के विभिन्न भागों में फैल गया और वह अंतर्राष्ट्रीय धर्म बन गया। वस्तुतः बिना किसी राजनीतिक और आर्थिक स्वार्थ के धर्म के प्रचार कोयह पहला उदाहरण था और इसका दूसरा उदाहरण अभी तक इतिहास में उपस्थित नहीं हुआ है।

अशोक का साम्राज्य-विस्तार

अशोक के साम्राज्य की सीमा का निर्धारण उसके अभिलेखों के आधार पर किया जा सकता है। शिलालेखों तथा स्तंभलेखों के विवरण से ही नहीं, वरन् जहाँ से अभिलेख पाये गये हैं, उन स्थानों की स्थिति से भी सीमा-निर्धारण करने में सहायता मिलती है। इन अभिलेखों में जनता के लिए राजा की घोषणाएँ थीं, इसलिए वे अशोक के विभिन्न प्रांतों में आबादी के मुख्य केंद्रों में उत्कीर्ण कराये गये।

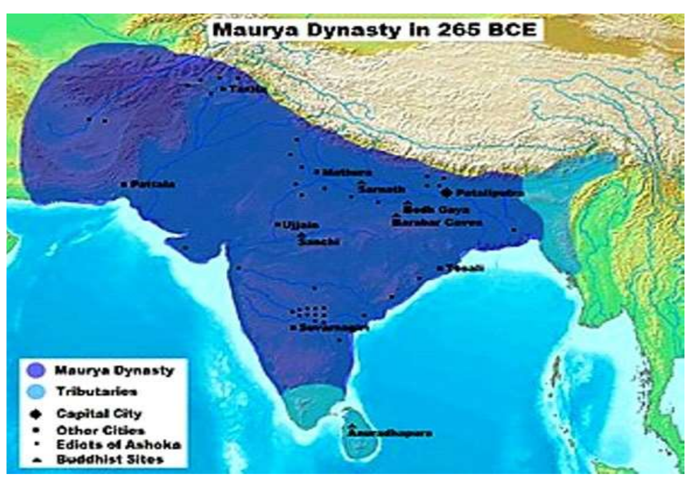

उत्तर-पश्चिम में पेशावर जिले के शाहबाजगढ़ी और हजारा जिले के मानसेहरा में अशोक के शिलालेख पाये गये हैं। इसके अतिरिक्त तक्षशिला में और काबुल प्रदेश में लमगान में अशोक के लेख आरमेईक लिपि में मिलते हैं। एक शिलालेख में एंटियोकस द्वितीय थियोस को पड़ोसी राजा कहा गया है। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने कपिशा में अशोक के स्तूप का उल्लेख किया है। इससे स्पष्ट है कि उत्तर-पश्चिम में अशोक के साम्राज्य की सीमा हिंदुकुश तक थी। राजतरंगिणी से पता चलता है कि कश्मीर पर अशोक का अधिकार था और उसने वहाँ विजयेश्वर नामक मंदिर का निर्माण करवाया था। कल्हण के अनुसार अशोक कश्मीर का प्रथम मौर्य शासक था। कालसी (देहरादून, उ.प्र.), रुम्मिनदेई तथा निग्लीवा सागर के स्तंभलेखों से सिद्ध होता है कि उत्तर में देहरादून और नेपाल की तराई का क्षेत्र अशोक के साम्राज्य में सम्मिलित था। सारनाथ तथा नेपाल की वंशावलियों के प्रमाण तथा स्मारकों से यह सिद्ध होता है कि नेपाल अशोक के साम्राज्य का एक अंग था। जब अशोक युवराज था, उसने खस और नेपाल प्रदेश को विजित किया था।

पूरब में बंगाल तक मौर्य साम्राज्य के विस्तृत होने की पुष्टि महास्थान अभिलेख से होती है। यह अभिलेख ब्राह्मी लिपि में है और मौर्यकाल का माना जाता है। महावंस के अनुसार अशोक अपने पुत्र को विदा करने के लिए ताम्रलिप्ति बंदरगाह तक आया था। ह्वेनसांग को भी ताम्रलिप्ति, कर्णसुवर्ण, समतट, पूर्वी बंगाल तथा पुंड्रवर्धन में अशोक द्वारा निर्मित स्तूप देखने को मिले थे। दिव्यावदान में कहा गया है कि अशोक के समय तक बंगाल मगध साम्राज्य का ही एक अंग था। असम कदाचित् मौर्य साम्राज्य से बाहर था।

उड़ीसा और गंजाम से लेकर पश्चिम में सौराष्ट्र तथा महाराष्ट्र तक अशोक का शासन था। धौली और जौगढ़ में अशोक के शिलालेख मिले हैं, साथ ही सौराष्ट्र में जूनागढ़ और अपरान्त में बंबई के पास सोपारा नामक स्थान से भी अशोक के शिलालेख पाये गये हैं।

दक्षिण में मौर्य प्रभाव के प्रसार की जो प्रक्रिया चंद्रगुप्त मौर्य के काल में आरंभ हुई थी, वह अशोक के नेतृत्व में और अधिक पुष्ट हुई। लगता है कि चंद्रगुप्त की सैनिक प्रसार की नीति ने वह स्थायी सफलता नहीं प्राप्त की, जो अशोक की धम्म-विजय ने की थी। वर्तमान कर्नाटक राज्य के ब्रह्मगिरि (चित्तलदुर्ग), मास्की (रायचूर), जटिंगरामेश्वर (चित्तलदुर्ग), सिद्धपुर (ब्रह्मगिरि से एक मील पश्चिम में स्थित) से अशोक के लघुशिलालेख प्राप्त हुए हैं। इससे दक्षिण में कर्नाटक राज्य तक अशोक का प्रत्यक्ष शासन प्रमाणित होता है। अशोक के शिलालेखों में चोल, चेर, पांड्य और केरल राज्यों को स्वतंत्र सीमावर्ती राज्य बताया गया है, इससे स्पष्ट है कि सुदूर दक्षिण भारत अशोक के साम्राज्य से बाहर था।

यद्यपि अशोक का साम्राज्य विस्तृत था तथापि साम्राज्य के अंतर्गत सभी प्रदेशों पर उसका सीधा शासन था। अशोक के पाँचवें और तेरहवें शिलालेख में कुछ जनपदों तथा जातियों का उल्लेख किया गया है, जैसे- यवन, कांबोज, नाभक, नाभापम्ति, भोज, पितनिक, आंध्र, पुलिंद। रैप्सन का विचार है कि ये देश तथा जातियाँ अशोक द्वारा जीते गये राज्य के अंतर्गत न होकर प्रभाव-क्षेत्र में थे। किंतु यह सही प्रतीत नहीं होता है क्योंकि इन प्रदेशों में अशोक के धर्म-महामात्रों के नियुक्त किये जाने का उल्लेख है। रायचौधरी के अनुसार इन लोगों के साथ विजितों तथा अंतर्विजितों के बीच का व्यवहार किया जाता था। गांधार, यवन, कांबोज, उत्तर-पश्चिमी सीमांत प्रदेश में थे। भंडारकर इन्हें काबुल तथा सिंधु के बीच स्थित मानते हैं। भोज बरार तथा कोंकण में तथा राष्ट्रिक या रठिक महाराष्ट्र में निवास करते थे। पितनिक पैठन में तथा आंध्र राज्य कृष्णा एवं गोदावरी नदियों के बीच स्थित था। तेरहवें शिलालेख में अशोक ने अटवी जातियों का उल्लेख किया है, जो अपराध करते थे। उन्हें यथासंभव क्षमा करने का आश्वासन दिया गया है, किंतु साथ ही यह चेतावनी भी दी गई है कि अनुताप अर्थात् पश्चाताप में भी देवानांप्रिय का प्रभाव है। यदि ये जातियाँ कठिनाइयाँ उत्पन्न करेंगी, तो राजा में उन्हें सजा देने तथा मारने की शक्ति भी है। संभवत: यह अटवी प्रदेश बुंदेलखंड से लेकर उड़ीसा तक फैले हुए थे। यद्यपि ये अटवी जातियाँ पराजित हुई थीं, तथापि उनकी आंतरिक स्वतंत्रता को मान्यता दे दी गई थी। इस प्रकार असम और सुदूर दक्षिण को छोड़कर संपूर्ण भारतवर्ष अशोक के साम्राज्य के अंतर्गत था।

वैदेशिक-संबंध

अशोक की धम्म-नीति ने उसकी वैदेशिक नीति को भी प्रभावित किया। उसने पड़ोसियों के साथ शांति और सह-अस्तित्व के सिद्धांतों के आधार पर अपना संबंध स्थापित किया। अशोक ने जो संपर्क स्थापित किये, वे अधिकांशतः दक्षिण एवं पश्चिम क्षेत्रों में थे और धम्म-मिशनों के माध्यम से स्थापित किये थे। इन मिशनों की तुलना आधुनिक सद्भावना-मिशनों से की जा सकती है। मिस्री नरेश टाल्मी फिलाडेल्फ ने अशोक के दरबार में अपना दूत भेजा था। तेरहवें शिलालेख में पाँच यवन राज्यों का उल्लेख मिलता है जिनके राज्यों में अशोक के धर्म-प्रचारक गये थे- सीरियाई नरेश एन्तियोक, मिस्री नरेश तुरमय, मेसीडोनियन शासक अंतिकिनि, मग (एपिरस) तथा अलिक सुंदर (सिरीन)। एंतियोक, सीरिया का शासक एंटियोकस द्वितीय थियोस (ई.पू. 261-246) था और तुरमय, मिस्र का शासक टाल्मी द्वितीय फिलाडेल्फ (ई.पू. 285-24) था। अंतिकिन, मेसीडोनिया का एंटिगोनाटास (ई.पू. 276-239) माना जाता है। मग से तात्पर्य सीरियाई नरेश मगस (ई.पू. 272-255) से है। अलिकसुंदर की पहचान निश्चित नहीं है। कुछ इतिहासकार इसे एपिरस का अलेक्जेंडर (ई.पू. 272-255) तथा कुछ कोरिन्थ का अलेक्जेंडर (ई.पू. 252-244) मानते हैं। संभवतः विदेशों में अशोक को उतनी सफलता नहीं मिली, जितनी साम्राज्य के भीतर। फिर भी विदेशों से संपर्क के जो द्वार सिकंदर के आक्रमण के पश्चात् खुले थे, वे अब और अधिक चौड़े हो गये। सातवाँ स्तंभ अभिलेख, जो अशोक के काल की आखिरी घोषणा मानी जाती है, ताम्रपर्णी, श्रीलंका के अतिरिक्त और किसी विदेशी शक्ति का उल्लेख नहीं करता।

ह्वेनसांग ने चोल-पांड्य राज्यों में, जिन्हें स्वयं अशोक के दूसरे व तेरहवें शिलालेख में सीमावर्ती प्रदेश बताया गया है, भी अशोक द्वारा निर्मित अनेक स्तूपों का वर्णन किया है। परिवर्तीकालीन साहित्य में, विशेष रूप से दक्षिण में अशोकराज की परंपरा काफी प्रचलित प्रतीत होती है। यह संभव है कि कलिंग में अशोक की सैनिक विजय और फिर उसके पश्चात् उसकी सौहार्दपूर्ण नीति ने भोज, पत्तनिक, आंध्रों, राष्ट्रिकों, सत्तियपुत्रों एवं केरलपुत्रों जैसी शक्तियों के बीच मौर्य प्रभाव के प्रसार को बढ़ाया होगा।

अपनी वैदेशिक नीति में अशोक को सर्वाधिक सफलता ताम्रपर्णी (श्रीलंका) में मिली। वहाँ का राजा तिस्स तो अशोक से इतना प्रभावित था कि उसने भी 'देवानांप्रिय' की उपाधि ही धारण कर ली। अपने दूसरे राज्याभिषेक में उसने अशोक को विशेष निमंत्रण भेजा, जिसके फलस्वरूप अशोक का पुत्र महेंद्र बोधिवृक्ष की पौध लेकर गया था। यह श्रीलंका में बौद्ध धर्म का पदार्पण था। श्रीलंका के प्राचीनतम् अभिलेख तिस्स के उत्तराधिकारी उत्तिय के काल के हैं, जो अपनी प्राकृत भाषा एवं शैली की दृष्टि से स्पष्टतः अशोक के अभिलेखों से प्रभावित हैं। अशोक और श्रीलंका के संबंध पारस्परिक सद्भाव, आदर-सम्मान एवं समानता पर आधारित थे, न कि साम्राज्यिक शक्ति एवं आश्रित शक्ति के पारस्परिक संबंधों पर।

इन विदेशी शक्तियों के अतिरिक्त कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं, जिनके संबंध में कुछ परंपराएँ एवं किंवदंतियाँ मिलती हैं। उदाहरणार्थ, कश्मीर संभवतः अन्य सीमावर्ती प्रदेशों की तरह ही अशोक के साम्राज्य से जुड़ा था। मध्य एशिया में स्थित खोतान के राज्य के बारे में एक तिब्बती परंपरा है कि बुद्ध की मृत्यु के 250 वर्ष के बाद अर्थात् ई.पू. 236 में अशोक खोतान गया था, किंतु अशोक के अभिलेखों में इसका कोई उल्लेख नहीं है।

अशोक महान् का मूल्यांकन

अशोक भारतीय इतिहास का ही नहीं, विश्व इतिहास के महानतम् शासकों में एक है। एक विजिगिषु शासक, महान् विजेता एवं साम्राज्य-निर्माता, धर्म-परायण एवं धर्म-सहिष्णु, दयालु, उदार, लोकहित-चिंतक एवं मानवता के अनन्य पोषक के रूप में सुप्रसिद्ध अशोक अपने उन्नत धार्मिक विचार, उच्चादर्श, आध्यात्मिक चिंतन, त्याग, सुव्यवस्थित प्रशासन, प्रजा की इहलौकिक और पारलौकि सुख की हार्दिक कामना तथा संपूर्ण विश्व के प्राणियों के हित-साधन की विराट् चेष्टा के कारण भारत ही नहीं, वरन् विश्व के महान् सम्राटों में अद्वितीय है। नाम्ना 'देवानांप्रिय', किंतु व्यवहारतः 'प्रजानांप्रिय' अशोक का चाहे जिस दृष्टि से मूल्यांकन किया जाये, वह सर्वथा योग्य सिद्ध होता है। उसकी महानता, उसके साम्राज्य की विशालता और उसकी सेना की

अजेयता, साम्राज्य की धन-संपन्नता तथा विपुल वैभव पर अवलंबित नहीं है, प्रत्युत् उसका स्वच्छ और निर्मल चरित्र, उसके महान् नैतिक आदर्श, उसकी अटल धर्मनिष्ठा, उसकी कर्त्तव्य-परायणता तथा उसकी महान् उदारता उसकी अमिट कीर्ति के प्रकाशमान् आधार हैं। उसमें चंद्रगुप्त मौर्य जैसी शक्ति, समुद्रगुप्त जैसी बहुमुखी प्रतिभा तथा अकबर जैसी सहिष्णुता थी।

अशोक के शासनकाल में भारतवर्ष ने अभूतपूर्व राजनीतिक एकता एवं स्थायित्व का साक्षात्कार किया। उसने तक्षशिला के विद्रोहों का दमन कर और कलिंग जैसे राज्य को विजित कर अपनी सैनिक-निपुणता का परिचय दिया। आदर्श प्रजापालक सम्राट के रूप में उसने प्रशासन के क्षेत्र में सुधार कर पितृपरक राजत्व की अवधारणा को साकार किया। अपने छठें शिलालेख में वह अपनी राजत्त्व-संबंधी विचारों को व्यक्त करते हुए कहता है, 'सर्वलोकहित मेरा कर्त्तव्य है। सर्वलोकहित से बढ़कर कोई दूसरा कर्म नहीं है। मैं जो कुछ पराक्रम करता हूँ, वह इसलिए कि भूतों के ऋण से मुक्त हो जाऊँ।' उसने संपूर्ण साम्राज्य में एक भाषा, एक लिपि, तथा एक ही प्रकार के नियम-कानून लागूकर राष्ट्रीय समस्या का कुशलतापूर्वक समाधान किया। न्याय प्रशासन के क्षेत्र में दंड-समता और व्यवहार-समता की स्थापना निश्चित ही अशोक का क्रांतिकारी कार्य था।

अशोक की ख्याति महान् विजेता के रूप में उतनी नहीं है, जितनी धर्मविजेता के रूप में। उसने कलिंग युद्ध के बाद युद्ध करने का विचार त्याग दिया और भेरीघोष के स्थान पर धर्मघोष का जयनाद कर धर्म के क्षेत्र में विजय-ध्वज फहराने का संकल्प लिया। धर्मविजय कोई सरल कार्य नहीं था, क्योंकि यह विजय बाहुबल की नहीं, आत्मबल तथा प्रेमबल की थी। यह विजय राज्य अथवा भूखंड पर नहीं, प्राणिमात्र के मस्तिष्क और भावना पर करनी थी। यह अशांति की नहीं, शांति की विजय थी। सत्य, सत्कर्म, सद्भावना एवं सद्व्यवहार की उसकी धर्मविजयी चतुरंगिणी सेना ने विभिन्न दिशाओं में जाकर भारतीयों को ही नहीं, विदेशियों को भी नतमस्तक कर दिया। उसने धम्म-महामात्रों, राजुकों, प्रादेशिकों आदि की नियुक्ति कर धर्म का ध्वज अनेक देशों में भेजा और धम्म-विजय की। यह आध्यात्मिक और सांस्कृतिक विजय स्थायी सिद्ध हुई। ऐसे महान् आदर्शवादी सम्राट विश्व इतिहास के पन्नों में विरले ही मिलते हैं।

कुछ विद्वानों ने अशोक की धार्मिक तथा शांतिवादी नीति की यह कहकर आलोचना की है कि उसने मगध साम्राज्य की सैनिक शक्ति को कुंठित कर दिया, जिससे अंततः उसका पतन हो गया। किंतु इसका कोई प्रमाण नहीं है कि अशोक की धार्मिकता एवं शांतिवादिता की नीति से मगध की सामरिक कुशलता का किसी भी प्रकार से ह्रास हुआ। उसने शांतिवादी नीति का इसलिए अनुसरण किया कि उसके संपूर्ण साम्राज्य में पूर्णरूपेण शांति और समरसता का वातावरण व्याप्त था तथा उसकी बाह्य सीमाएँ भी पूर्णतया सुरक्षित थीं। सीमांत एवं जंगली जातियों को वह जिस प्रकार कड़े शब्दों में चेतावनी देता है, उससे स्वतः सिद्ध हो जाता है कि साम्राज्य में किसी भी प्रकार की सैनिक शिथिलता नहीं आई थी।

विश्व में अनेक विजेता शासक हुए हैं जिनकी कृतियों से इतिहास के पन्ने भरे पडें हैं। इनमें सिकंदर, सीजर, नेपोलियन आदि के नाम अग्रगण्य हैं। यह सही है कि ये तीनों योद्धा एवं प्रशासक के रूप में अशोक से बढ़कर थे, किंतु किसी सम्राट की महानता का मानदंड मात्र युद्ध तथा साम्राज्य-विस्तार नहीं होते हैं, वह मानवता के प्रति अपने दृष्टिकोण तथा उसके लिए किये गये अपने कार्यों के कारण महान् बनता है। ये तीनों विजेता क्रूर, निर्दयी एवं रक्त-पिपासु थे। उनके द्वारा स्थापित साम्राज्य उनके साथ ही छिन्न-भिन्न हो गया तथा मानवजाति के लिए इन विश्व विजेताओं की कोई स्थायी देन नहीं है। इतिहासकार एच.जी. वेल्स सिकंदर के संबंध में लिखते हैं, 'ज्यों-ज्यों उसकी शक्ति बढ़ी, त्यों-त्यों उसकी मदांधता और प्रचंडता भी बढ़ती गई। वह खूब शराब पीता था तथा निर्दयतापूर्वक हत्याएँ करता था.....तैंतीस वर्ष की आयु में ही वह चल बसा। लगभग तुरन्त ही उसका साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े होने लगा। इसी प्रकार सीजर अत्यंत लंपट तथा उच्शृंखल व्यक्ति था। जिस समय वह अपनी शक्ति की पराकाष्ठा पर था और विश्व का भला कर सकता था, उस समय लगभग एक वर्ष तक मिस्र में क्लियोपेट्रा के साथ रंगरेलिया मनाता रहा, यद्यपि उसकी आयु चौवन वर्ष की थी। इससे

वह निम्नकोटि का विषयासक्त दिखाई देता है, न कि श्रेष्ठ शासक। जहाँ तक नेपोलियन का सवाल है, उसके विषय में भी वेल्स सही सोचते हैं कि यदि उसमें तनिक भी दृष्टि की गंभीरता, सृजनात्मक कल्पना-शक्ति तथा नि:स्वार्थ आकांक्षा रही होती, तो उसने मानव जाति के लिए ऐसा काम किया होता जो इतिहास में उसे सूर्य बना देता। उसने अपने देश का चाहे जितना भी भला किया हो, मानव-कल्याण के प्रति उसके द्वारा किये गये कार्य प्राय: शून्य हैं। अशोक के व्यक्तित्व में इन विजेता शासकों के कोई भी दुर्गुण नहीं मिलते। यह अशोक ही है जिसके लोकोपकारी कृतियों एवं उदात्त आदर्शों के प्रति आज भी विश्व में सम्मान है। नि:संदेह, अशोक ही है जो अपनी प्रजा के भौतिक एवं आत्मिक कल्याणार्थ किये गये लोकहितकारी कार्यों के कारण विश्वव्यापी एवं शाश्वत यश का अधिकारी है।

विभिन्न विद्वानों ने अशोक की तुलना विश्व इतिहास की भिन्न-भिन्न विभूतियों, जैसे- कान्स्टेंटाइन, एंटोनिसस, अकबर, सेंट पाल, नेपोलियन, सीजर आदि के साथ की है, किंतु इनमें से कोई भी अशोक की बहुमुखी प्रतिभा की बराबरी में नही टिकता। रिज डेविड्स अशोक की तुलना कान्स्टेंटाइन से करते हैं। अशोक तथा रोमन सम्राट कान्स्टेंटाइन में मात्र यही समानता है कि अशोक ने जिस प्रकार बौद्ध धर्म को ग्रहण कर उसका प्रचार-प्रसार किया, उसी प्रकार कान्स्टेण्टाइन ने भी ईसाई धर्म को ग्रहण कर उसका प्रचार-प्रसार करवाया था। किंतु उसके उदय के पूर्व ही ईसाई धर्म रोम में काफी लोकप्रिय हो चुका था और उसे अपनाना कान्स्टेनटाइन की विवशता बन गई थी। उसने राजनैतिक कारणों से उत्प्रेरित होकर इस धर्म को संरक्षण एवं प्रोत्साहन दिया था, जबकि अशोक के धर्म के पीछे कोई राजनैतिक चाल नहीं थी। अशोक की सहिष्णुता सच्चे हृदय की प्रेरणा थी। कान्स्टेण्टाइन अपने जीवन के अंतिम दिनों में प्रतिक्रियावादी होकर पेगनवाद की ओर उन्मुख हुआ और उसका धर्म एक अजीब खिचड़ी हो गया। इसके विपरीत अशोक में कोई ऐसी गिरावट नहीं दिखाई देती। इसी प्रकार मैकफेल अशोक की तुलना एक अन्य रोमन सम्राट मार्कस ओरेलियस एण्टोनियस के साथ करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि एण्टोनियस एक महान् दार्शनिक था, किंतु जैसा कि भंडारकर लिखते हैं कि आदर्श की उदात्तता और अविभ्रान्त तथा सम्यग्योजित उत्साह की दृष्टि से अशोक रोमन सम्राट से कहीं ऊपर था। वह ईसाई धर्म के प्रचार को रोमन समृद्धि के लिए घातक समझता था और इस कारण उसने ईसाइयों पर व्यवस्थित ढंग से अत्याचार भी किया। दूसरी ओर अशोक में धार्मिक कट्टरता अथवा असहिष्णुता का नितांत अभाव था। ऐसी स्थिति में अशोक का स्थान एंटोनियस से कहीं ऊँचा है।

अनेक इतिहासकार अशोक की तुलना मुगल सम्राट अकबर से करना करते हैं। नि:संदेह अकबर में सहिष्णुता थी तथा वह भी सच्चे हृदय से अपनी प्रजा का कल्याण करना चाहता था। विभिन्न धर्मों तथा संप्रदायों की अच्छी-अच्छी बातों को ग्रहण कर उसने सामान्य जनता के कल्याण के लिए दीने-इलाही नामक नया धर्म भी चलाया। किंतु जैसा कि भंडारकर ने स्पष्ट किया है कि अकबर सबसे पहले एक राजनैतिक तथा सांसारिक व्यक्ति था। धार्मिक सत्य के लिए वह अपनी बादशाहत को संकट में डालने के लिए तैयार नहीं था। उसने मुस्लिम प्रजा के विरोध से बचने के लिए धार्मिक वाद-विवाद को बंद करवा दिया। पुन: वह सबके प्रति सहिष्णु भी नहीं था। अकबर में अशोक जैसा धार्मिक उत्साह भी नहीं था। इसी कारण उसका धर्म राजदरबार के बाहर नहीं जा सका तथा उसकी मृत्यु के साथ ही समाप्त हो गया। दूसरी ओर अशोक में कहीं भी असहिष्णुता नहीं दिखाई देती। उसका धर्म विश्वधर्म बन गया। नीलकंठ शास्त्री लिखते हैं कि अशोक को अकबर की अपेक्षा मानव प्रकृति का बेहतर ज्ञान था। इस प्रकार अशोक अकबर की अपेक्षा कहीं ज्यादा महान् था।

मैकफेल ने अशोक के संदर्भ में सेंट पाल का नाम लिया है। जिस प्रकार बौद्ध धर्म के इतिहास में अशोक महान् व्यक्ति है, उसी प्रकार ईसाई धर्म के इतिहास में सेंट पाल महान् हैं। दोनों ने अपने-अपने धर्मों को जन-सामान्य के लिए कल्याणकारी बना दिया। किंतु इसके अलावा दोनों में कोई समानता नहीं है। इसी प्रकार अशोक की तुलना एल्फ्रेड, शार्लमेन, उमर खलीफा आदि शासकों से की जाती है, किंतु इनमें से कोई भी अशोक जैसी बहुमुखी प्रतिभा-संपन्न नहीं था। इतिहासकार एच.जी. वेल्स अशोक के व्यक्तित्व एवं

चरित्रा का मूल्यांकन करते हुए लिखते हैं, 'इतिहास के स्तंभों को भरने वाले राजाओं, सम्राटों, धर्माधिकारियों, संतों, महात्माओं आदि के मध्य अशोक का नाम प्रकाशमान् है और वह आकाश में प्राय: एकाकी नक्षत्रा की भाँति देदीप्यमान् है।' वोल्गा से जापान तक आज भी उसके नाम का सम्मान किया जाता है। इसी प्रकार चार्ल्स इलियट ने लिखा है कि पवित्रा सम्राटों की दीर्घा में वह अकेला ही खड़ा है, शायद एक ऐसे व्यक्ति के समान, जिसका अनुराग, दयावान एवं सुखद जीवन के लिए था। वह न तो महान् आकांक्षाओं का था, न ही अपनी आत्मा में लवलीन था, वह मानव तथा पशु कोएक हितैषी मात्रा था। आर.सी. दत्त अशोक को भारत का महानतम् सम्राट बताते हुए लिखते हैं कि भारत के किसी सम्राट ने, यहाँ तक की विक्रमादित्य ने भी इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं की तथा किसी ने भी धार्मिकता तथा सदाचार के प्रति अपने उत्साह के कारण विश्व-इतिहास पर इतना अधिक प्रभाव उत्पन्न नहीं किया, जितना कि मौर्य सम्राट अशोक ने।

इस प्रकार विश्व इतिहास में अशोक का स्थान सर्वथा अ)ितीय है। सही अर्थों में वह प्रथम राष्ट्रीय शासक था। आज जब विश्व के देश हथियारों की होड़ रोकने तथा युद्ध की विभीषिका को टालने के लिए सतत् प्रत्यनशील होकर भी सफल नही हो पा रहे हैं और मानवता के लिए परमाणु युद्ध का गंभीर संकट बना हुआ है, तब अशोक के कार्यों की महत्ता और उनकी प्रासंगिकता स्वयमेव स्पष्ट हो जाती है। अशोक के उदात्त आदर्श विश्व-शांति की स्थापना के लिए आज भी मार्गदर्शन करते हैं। स्वतंत्र भारत की सरकार ने सारनाथ-स्तंभ के सिंह-शीर्ष को राजकीय चिन्ह के रूप में स्वीकार कर इस महान् शासक के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित की है।

अशोक के कर्मठ जीवन का अंत कब, कैसे और कहाँ हुआ, इस संबंध में कोई स्पष्ट सूचना नहीं मिलती है। चालीस वर्ष शासन करने के बाद लगभग ई.पू. 232 में अशोक की मृत्यु हुई। तिब्बती परंपरा के अनुसार उसका देहावसान तक्षशिला में हुआ। उसके एक शिलालेख के अनुसार अशोक का अंतिम कार्य भिक्षुसंघ में फूट डालने की निंदा करना था।

अशोक के उत्तराधिकारी

अशोक के बाद ही मौर्य साम्राज्य का पतन आरंभ हो गया और लगभग पचास वर्ष के अंदर इस साम्राज्य का अंत हो गया। अभिलेखों से पता चलता है कि अशोक के कई पुत्र थे, किंतु लेखों में केवल उसके पुत्र तीवर और उसकी माता कारुवाकी का ही उल्लेख मिलता है। संभवत: तीवर कभी मगध के राजसिंहासन पर नहीं बैठा। बौद्ध साहित्य में महेंद्र का नाम अशोक के पुत्र के रूप में प्रयुक्त किया गया है, जिसे सम्राट ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए श्रीलंका भेजा था। बौद्ध धर्मानुयायी होने के कारण संभवत: महेंद्र ने भी राजकार्य में रुचि नहीं ली।

वायु पुराण में अशोक के बाद कुणाल, बंधुपालित, इंद्रपालित, देववर्मन, सतधनुष तथा बृहद्रथ और विष्णु पुराण में सुयशस, दशरथ, संगत, शालिशुक, सोमशर्मन तथा बृहद्रथ का नाम मिलता है। मत्स्य पुराण में दशरथ, संप्रति, शतधनु तथा बृहद्रथ और भगवत पुराण में अशोक के बाद सुयश, संगत, शालिशुक, सोमशर्मा, शतधन्वा तथा बृहद्रथ का उल्लेख है। दिव्यावदान में अशोक के बाद संप्रति, बृहस्पति, वृषसेन, पुण्यधर्मन् तथा पुष्यमित्र का नाम प्राप्त होता है। इसी प्रकार कलियुगराजवृतांत में सुपार्श्व, बंधुपालित, इंद्रपालित, संगत, शालिशुक, देववर्मा, शतधनु तथा बृहद्रथ का उल्लेख है। तारानाथ ने अशोक के उत्तराधिकारियों में कुणाल, विगताशोक तथा वीरसेन का नाम दिया है।

पुराणों के अनुसार अशोक के बाद कुणाल गद्दी पर बैठा। रायचौधरी का अनुमान है कि विष्णु तथा भागवत पुराण में सुयशस नामक जिस शासक का उल्लेख है, वह वस्तुत: कुणाल ही है। सुयशस उसकी उपाधि थी। दिव्यावदान में उसे 'धर्मविवर्धन' कहा गया है, किंतु अशोक के और भी पुत्र थे। राजतरंगिणी के अनुसार जालौक कश्मीर का स्वतंत्र शासक था। तारानाथ के अनुसार वीरसेन अशोक का पुत्र था, जो गांधार का

स्वतंत्र शासक था। लगता है अशोक की मृत्यु के बाद ही मौर्य साम्राज्य का विघटन प्रारंभ हो गया था। कुणाल अंधा था, इसलिए वह शासन-कार्य में असमर्थ था। जैन तथा बौद्ध ग्रंथों के अनुसार शासन की बागडोर उसके पुत्र संप्रति के हाथ में थी। इन अनुश्रुतियों के अनुसार संप्रति ही कुणाल का उत्तराधिकारी था।

पुराणों तथा नागार्जुनी पहाड़ियाँ की गुफाओं के शिलालेख के अनुसार दशरथ कुणाल का पुत्र था। दशरथ ने 'देवानांप्रिय' उपाधि धारण की थी और नागार्जुनी गुफाओं को आजीविकों को दान में दिया था। मत्स्य तथा वायु पुराण में भी दशरथ को अशोक के पौत्र के रूप में उल्लिखित किया गया है। इससे स्पष्ट है कि दशरथ और संप्रति अशोक के पौत्र तथा कुणाल के पुत्र थे। इन प्रमाणों के आधार पर अनुमान किया जाता है कि मगध साम्राज्य दो भागों में विभक्त हो गया। दशरथ का अधिकार साम्राज्य के पूर्वी भाग में तथा संप्रति का पश्चिमी भाग में था। पुराणों में दशरथ का शासनकाल आठ वर्ष बताया गया है।

संप्रति, दशरथ के बाद भी जीवित रहा और संभवतः उसने पाटलिपुत्र पर पुनः अधिकार कर लिया। जैन साहित्य में संप्रति को वही स्थान प्राप्त है, जो बौद्ध साहित्य में अशोक को। जैन ग्रंथों में उसे 'त्रिखंडाधिपति' कहा गया है। इसके अनुसार संप्रति मौर्य शासकों में सर्वश्रेष्ठ था और उसके काल में मौर्य साम्राज्य का विकास चरम पर पहुँच गया था। पुराणों के अनुसार इसने नौ वर्ष तक शासन किया।

विष्णु पुराण तथा गार्गी संहिता के अनुसार दशरथ तथा संप्रति के बाद उल्लेखनीय मौर्य शासक शालिशुक था। दिव्यावदान में संप्रति के पुत्र बृहस्पति का उल्लेख मिलता है। रायचौधरी शालिशुक और बृहस्पति को एक ही मानते हैं। गार्गी संहिता में इसे अत्यंत झगड़ालू एवं धूर्त शासक बताया गया है और कहा गया है कि वह अधार्मिक शासक था तथा प्रजा पर निर्दयतापूर्वक अत्याचार करता था। देववर्मन् तथा शोमशर्मन् भी संभवतः एक ही थे। इसी प्रकार शतधनुष तथा शतधन्वा भी एक ही व्यक्ति के नाम प्रतीत होते हैं। वृषसेन तथा पुण्यवर्धन के संबंध में अधिक ज्ञान नहीं है।

पुराणों में ही नहीं, वरन् हर्षचरित में भी मगध के अंतिम सम्राट का नाम बृहद्रथ मिलता है। हर्षचरित के अनुसार मौर्यवंश के अंतिम सम्राट बृहद्रथ की उसके सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने सेना के सामने ही उसकी हत्या कर दी और स्वयं सिंहासन पर आरूढ़ हो गया।

मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण

चंद्रगुप्त मौर्य की महत्त्वाकांक्षाओं और अनवरत युद्धों, कौटिल्य की नीतियों और अशोक की बंधुत्व-भावना के फलस्वरूप मौर्य साम्राज्य अशोक के समय अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया। इतिहास के ग्रंथों में उस समय मौर्य साम्राज्य एक इतिहास का निर्माण कर रहा था, किंतु अशोक की मृत्यु के तुरंत बाद से ही यह विस्तृत साम्राज्य बिखरने लगा और अगले पचास वर्षों में ही मौर्य साम्राज्य अतीत की वस्तु बन गया और उसके खंडहरों पर सातवाहन और शुंग वंश की नींव पड़ गई। इतने अल्पसमय में इतने विस्तृत साम्राज्य का नष्ट हो जाना एक ऐसी घटना है कि इतिहासकारों में साम्राज्य-विनाश के कारणों की जिज्ञासा स्वाभाविक ही है। आखिर वे कौन से कारण थे, जो इसके पतन के लिए उत्तरदायी थे? क्या इसकी शुरुआत अशोक के समय से ही हो गई थी अथवा इसके लिए परवर्ती शासक ही दोषी थे? क्या इसके लिए अशोक की धम्म-नीति को दोषी ठहराया जा सकता है अथवा मौर्यों के केंद्रित प्रशासन को? वस्तुतः मौर्य साम्राज्य का पतन किसी कारण-विशेष का परिणाम नहीं था। इस साम्राज्य के पतन के उत्तरदायी परिस्थितियों एवं कारणों की समीक्षा निम्नलिखित है-

1. अयोग्य एवं दुर्बल उत्तराधिकारी

मौर्य साम्राज्य के पतन का तात्कालिक कारण अशोक के अयोग्य एवं दुर्बल उत्तराधिकारी थे। वंशानुगत साम्राज्य तभी तक बने रह सकते हैं, जब तक योग्य शासकों की शृंखला बनी रहे। सम्राट अशोक के बाद अयोग्य और दुर्बल परवर्ती मौर्य शासकों में शासन-संगठन एवं संचालन की योग्यता का अभाव था,

इसलिए वे साम्राज्य की एकता को बनाये रखने में असफल रहे। साहित्यिक स्रोतों से पता चलता है कि अशोक का साम्राज्य उसके उत्तराधिकारियों में विभाजित हो गया था। राजतरंगिणी से पता चलता है कि कश्मीर में जालौक ने अपना स्वतंत्र राज्य स्थापित कर लिया था। तारानाथ के विवरण से ज्ञात होता है कि वीरसेन ने गांधार प्रदेश में स्वतंत्र राज्य की स्थापना कर ली थी, विदर्भ भी स्वतंत्र हो गया था और संभवतः सातवाहनों ने भी दकन में अपनी स्वतंत्र सत्ता की स्थापना कर ली थी। इस प्रकार अयोग्य एवं दुर्बल उत्तराधिकारियों के कारण साम्राज्य के विभिन्न भाग धीरे-धीरे स्वतंत्र होने लगे।

चंद्रगुप्त की विजयों, कौटिल्य की कूटनीति तथा चक्रवर्ती सम्राट के आदर्श के बावजूद मौर्य साम्राज्य के अंतर्गत कई अर्ध-स्वतंत्र राज्य थे, जैसे- यवन, काम्बोज, भोज, आटविक राज्य आदि। केंद्रीय सत्ता के दुर्बल होते ही ये प्रदेश स्वतंत्र हो गये। स्थानीय स्वतंत्राता की भावना को चंद्रगुप्त ने अपने सुसंगठित प्रशासन से तथा अशोक ने अपने नैतिकता पर आधारित धम्म से कम करने का प्रयास किया, किंतु अयोग्य उत्तराधिकारियों के शासनकाल में यह भावना और बढ़ी और साम्राज्य के विघटन में सहायक सिद्ध हुई।

2. प्रांतीय शासकों के अत्याचार

हेमचंद्र रायचौधरी के अनुसार मौर्यों के दूरस्थ प्रांतों के शासक अत्याचारी थे। दिव्यावदान में बिंदुसार और अशोक के समय तक्षशिला में विद्रोह होने का उल्लेख है। दोनों बार उन्होंने राजकुमार अशोक और कुणाल से दुष्टामात्यों के विरुद्ध शिकायतें की-

न वयं कुमारस्य विरुद्धाः नापि राज्ञो बिंदुसारस्य।
अपितु दुष्टाः अमात्याः अस्माकं परिभवं कुर्वन्ति।।

दिव्यावदान में उल्लिखित अमात्यों (उच्चाधिकारियों) की दुष्टता की पुष्टि अशोक के कलिंग अभिलेख से भी होती है। कलिंग के उच्च अधिकारियों को संबोधित करते हुए अशोक ने कहा है कि नागरिकों की नजरबंदी या उनको दी जानेवाली यातना अकारण नहीं होनी चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सम्राट अशोक ने प्रति पाँचवें वर्ष केंद्र से निरीक्षाटन के लिए उच्चाधिकारियों को भेजने की व्यवस्था की। इसमें कोई संदेह नहीं है कि अशोक ने इन उच्च अधिकारियों की कार्यविधियों पर नियंत्रण रखा, किंतु उसके उत्तराधिकारियों के राज्यकाल में ये अमात्य और उच्च अधिकारी अधिक स्वतंत्र हो गये और प्रजा पर अत्याचार करने लगे। परवर्ती मौर्य शासकों में शालिशुक को अत्याचारी शासक बताया गया है। अत्याचार और उत्पीड़न के कारण जनता मौर्य शासन से घृणा करने लगी और अवसर पाते ही अनेक राज्यों ने अपनी स्वतंत्राता घोषित कर दी।

3. आर्थिक कारण

कुछ विद्वानों ने आर्थिक कारणों को भी मौर्य साम्राज्य के पतन का कारण माना है। उत्तरकालीन मौर्यों के राज्यकाल में अर्थव्यवस्था संकटग्रस्त थी। कर-वृद्धि के लिए अनेक उपाय अपनाये गये, अभिनेताओं तथा गणिकाओं पर भी कर लगाये गये।[72] इस काल के आहत सिक्कों में काफी मिलावट है। सिक्कों में मिलावट होने से यह नतीजा निकाला जा सकता है कि अर्थव्यवस्था पर भारी दबाव था। किंतु रोमिला थापर का सुझाव है कि मौर्यों के ही काल में सर्वप्रथम राज्य की आय के प्रमुख साधन के रूप में करों के महत्त्व को समझा गया। विकसित अर्थव्यवस्था और राज्य के कार्य-क्षेत्र के विस्तार के साथ करों में वृद्धि होना स्वाभाविक ही है। उत्तरकालीन मौर्य शासकों ने जो कर लगाये थे, वे अर्थशास्त्र के ही अनुरूप थे। संभवतः उत्तरकालीन मौर्यों के शासन में क्षीण नियंत्रण के कारण मिलावटवाले सिक्के अधिक मात्रा में जारी होने लगे, विशेषकर उन प्रदेशों में, जो साम्राज्य से अलग हो गये थे। चाँदी की अधिक माँग होने के कारण संभव है कि चाँदी के सिक्कों में चाँदी की मात्रा में कमी कर दी गई हो। इसके अलावा कोसम्बी की यह धारणा इस आधार पर बनी है कि ये आहत सिक्के मौर्यकाल के हैं, किंतु यह निश्चित नहीं है। हस्तिनापुर तथा शिशुपालगढ़ की खुदाइयों से जो मौर्यकालीन अवशेष मिले हैं, उनसे एक विकसित अर्थव्यवस्था तथा भौतिक समृद्धि का ही परिचय मिलता है।

फिर भी, हस्तिनापुर और शिशुपालगढ़ की खुदाइयों के आधार पर यह नहीं माना जा सकता कि मौर्य अर्थव्यवस्था पर कोई दबाव नहीं था। पतंजलि की मानें तो मौर्य शासकों ने कोष-वृद्धि के लिए जनता की धार्मिक भावनाओं को जागृत करने का प्रयास किया था। इसके लिए मौर्य शासकों ने देवी-देवताओं की मूर्तियों की बिक्री प्रारंभ कर दी थी। बार-बार पड़नेवाले दुर्भिक्षों से भी आर्थिक संतुलन बिगड़ता चला गया। इसकी पुष्टि सोहगौरा तथा महास्थान लेख से होती है जिसमें अकाल-पीड़ितों के लिए बनवाये गये अन्नागारों का उल्लेख है। परवर्ती काल में दूरस्थ प्रांतों के मौर्य साम्राज्य से अलग होने के कारण भी केंद्रीय कोष पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। अशोक की दानशीलता से मौर्य-अर्थव्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई थी। दिव्यावदान में अशोक के दान की जो कथाएँ दी गई हैं, उनकी पुष्टि अन्य बौद्ध अनुश्रुतियों से भी होती है।

किंतु आर्थिक कारणों को मौर्य साम्राज्य के पतन का कारण नहीं माना जा सकता है। इसका कोई ठोस प्रमाण नहीं है कि मौर्य अर्थव्यवस्था पर किसी प्रकार का दबाव था। सोहगौरा और महास्थान अभिलेख में उल्लिखित अन्नागार केवल आपातकाल के लिए थे और इन्हें आरंभिक मौर्यकाल का ही माना जाता है।

4. विदेशी विचारों का अस्वीकरण

निहाररंजन राय के अनुसार पुष्यमित्र की राज्य-क्रांति मौर्य अत्याचार से विरुद्ध तथा मौर्यों द्वारा अपनाये गये विदेशी विचारों का, विशेषत: कला के क्षेत्र में अस्वीकार था। इस तर्क का आधार यह है कि साँची और भरहुत की कला लोक-परंपरा के अनुकूल तथा भारतीय है, किंतु मौर्यकला इस लोककला से भिन्न है और विदेशी कला से प्रभावित है। निहाररंजन राय के अनुसार जनसाधारण के विद्रोह का दूसरा कारण अशोक के द्वारा समाजों का निषेध था, जिससे जनता अशोक के विरुद्ध हो गई।

किंतु यह निश्चित नहीं है कि यह निषेध अशोक के उत्तराधिकारियों ने भी जारी रखा था। इसके अतिरिक्त जनता के विद्रोह के लिए यह आवश्यक है कि मौर्यों की प्रजा में विभिन्न स्तरों पर एक संगठित राष्ट्रीय जागरण हो, ताकि वे पुष्यमित्र के समर्थन में मौर्यों के अत्याचार के विरुद्ध विद्रोह का समर्थन कर सकें। किंतु ऐसी जागृति की सम्भावना तत्कालीन परिस्थितियों में संभव नहीं दिखाई देती।

5. प्रशासनिक व्यवस्था

रोमिला थापर ने प्रशासन के संगठन तथा राज्य अथवा राष्ट्र की अवधारणा को ही मौर्य साम्राज्य के पतन के कारणों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बताया है। उनके अनुसार मौर्य साम्राज्य के पतन की संतोषजनक व्याख्या सैनिक अकर्मण्यता, ब्राह्मण रोष, सार्वजनिक विद्रोह या आर्थिक दबाव के आधार पर नहीं की जा सकती है। शासन-संगठन का अत्यधिक केंद्रीकरण और राष्ट्र की संकल्पना का अभाव मौर्य साम्राज्य के पतन का महत्त्वपूर्ण कारण था। मौर्य प्रशासन में केंद्रीकरण की प्रधानता थी और सभी कार्य सम्राट के प्रत्यक्ष नियंत्रण में होते थे। केंद्रीयकृत प्रशासनिक व्यवस्था की सफलता सम्राट की व्यक्तिगत योग्यता पर ही निर्भर करती थी। सम्राट द्वारा ही वरिष्ठ पदाधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी। इन वरिष्ठ पदाधिकारियों की निष्ठा राज्य के प्रति न होकर अपने सम्राट के प्रति होती थी। अशोक की मृत्यु के बाद, विशेषकर जब साम्राज्य का विभाजन हो गया तो केंद्र का नियंत्रण शिथिल हो गया और एक-एक कर प्रांत साम्राज्य से पृथक् होने लगे। दूसरा कारण है कि अधिकारी-तंत्र भलीभाँति प्रशिक्षित नहीं था। प्रतियोगिता परीक्षा के आधार पर चुने हुए अधिकारी ही राजनीतिक हलचल के बीच शांति एवं व्यवस्था बनाये रखने में समर्थ हो सकते थे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में ऐसी व्यवस्था पाई जाती है।

किंतु थापर का यह मत स्वीकार नहीं किया जा सकता। अर्थशास्त्र से स्पष्ट है कि सभी उच्च कर्मचारी योग्यता के आधार पर नियुक्त किये जाते थे। यथार्थ परीक्षण के आधार पर अधिकारियों की नियुक्ति की जो व्यवस्था मौर्यकाल में थी, वह प्राचीन भारत या मध्यकालीन भारत में कहीं भी नहीं पाई जाती और आधुनिक प्रतियोगिता परीक्षा-पद्धति की कल्पना उस युग में करना ऐतिहासिक दृष्टि से अनुचित है। शासन-संगठन के संबंध में कहा गया है कि ऐसी प्रतिनिधि सभा का अभाव था जो राजा के कार्यों पर

नियंत्राण रखती, किंतु राजतंत्र पर आधारित सभी प्राचीन तथा मध्यकालीन राज्यों की यही विशेषता रही है। ऐसी स्थिति में प्रतिनिधि संस्था के अभाव को मौर्य-साम्राज्य के पतन का कारण नहीं माना जा सकता है।

यह भी कहा गया है कि मौर्यकालीन राजनीतिक व्यवस्था में राज्य की संकल्पना का अभाव था। राज्य की संकल्पना इसलिए आवश्यक है कि राज्य को राजा, शासन तथा सामाजिक व्यवस्था से ऊपर माना जाता है। राज्य वह सत्ता है जिसके प्रति व्यक्ति की शासन व समाज से परे पूर्ण निष्ठा या भक्ति रहती है। संपूर्ण मौर्य साम्राज्य में समान रीति-रिवाज, भाषा व परंपराएँ नहीं थीं। आर्थिक दृष्टि से उत्तरी भारत समृद्ध था, तो दकन का प्रदेश अविकसित और आर्थिक रूप से कमजोर था।

किंतु मौर्यकाल में राज्य की संकल्पना विद्यमान थी। कौटिल्य ने जिस सप्तांग राज्य की कल्पना की है, वह अत्यंत विकसित थी। यदि यह मान भी लिया जाये कि राज्य की कल्पना मौर्य युग में नहीं थी, तो यूनान के अतिरिक्त विश्व में प्राचीन तथा मध्यकाल में राज्य की ऐसी संकल्पना कहीं नहीं पाई जाती, जहाँ राज्य, राजा तथा समाज से ऊपर हो और जिसके प्रति व्यक्ति की निष्ठा, राजा तथा समाज की अपेक्षा अधिक हो। राष्ट्रीय भावना के संबंध में भी यही बात कही जा सकती है। राष्ट्र की भावना आधुनिक राजनीतिक तत्त्व है। प्राचीन तथा मध्यकाल में इसकी खोज करना व्यर्थ है। एथेंस, स्पार्टा सदृश छोटे देशों में यह भावना संभव है, किंतु एक साम्राज्य, जिसमें अनेक राज्यों तथा जातियों के लोग रहते हों, इसकी कल्पना करना असंगत है। इस प्रकार रोमिला थापर द्वारा प्रस्तुत किये गये उपर्युक्त कारणों में से कोई भी कारण मौर्य साम्राज्य के विघटन का प्रमुख कारण नहीं माना जा सकता है।

6. मौर्य साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार

मौर्य साम्राज्य के पतन का एक कारण उसका अत्याधिक विस्तार था। इस विस्तृत साम्राज्य पर नियंत्राण करना सरल नहीं था, इसलिए उसका प्रांतों में विभाजन किया गया था। प्रशासनिक सुविधा की दृष्टि से यह विभाजन उचित था, किंतु इसके दूरगामी परिणाम साम्राज्य के लिए अहितकर सिद्ध हुए। प्रांतीय अधिकारियों को जब भी केंद्रीय शक्ति की दुर्बलता का आभास हुआ, उन्होंने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी जिससे साम्राज्य में अराजकता और अव्यवस्था का वातावरण निर्मित हुआ।

7. गृह-कलह और दरबारी षड्यंत्र

परवर्ती मौर्य शासकों की गृह-कलह तथा परस्परिक ईर्ष्या से भी मौर्य साम्राज्य कमजोर हुआ। इस अंतर्कलह और दरबारी षड्यंत्र के प्रमाण अशोक के समय से ही मिलते हैं जब उसने राधागुप्त की सहायता से सुसीम को हटाकर सत्ता पर अधिकार किया था। अशोक की मृत्यु के बाद मौर्य साम्राज्य का विभाजन इसका स्पष्ट प्रमाण है। मालविकाग्निमित्रम् से पता चलता है कि बृहद्रथ के समय में राजदरबार में दो गुट हो गये थे- एक सचिव गुट और दूसरा सेनापति गुट। दोनों गुटों में सदैव प्रतिद्वंद्विता बनी रहती थी। अंततः सेनापति गुट का प्रमुख पुष्यमित्र शुंग सेना के समक्ष राजा बृहद्रथ की हत्या करके सत्ता प्राप्त करने में सफल हो गया।

मौर्य साम्राज्य के पतन में अशोक का उत्तरदायित्व

अनेक इतिहासकारों ने मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए अशोक और उसकी नीतियों को उत्तरदायी ठहराया है। कुछ इतिहासकार अशोक की ब्राह्मण-विरोधी नीति को मौर्य साम्राज्य के पतन का कारण मानते हैं तो कुछ उसकी अहिंसावादी नीति को।

1. अशोक की ब्राह्मण-विरोधी नीति

महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री ने अशोक की धार्मिक नीति को साम्राज्य के पतन का मुख्य कारण माना है। उनके अनुसार अशोक की धार्मिक नीति बौद्धों के पक्ष में थी और ब्राह्मणों के विशेषाधिकारों व उनकी सामाजिक श्रेष्ठता की स्थिति पर कुठाराघात करती थी। अशोक ने पशुबलि पर रोक लगाकर ब्राह्मण वर्ग को नाराज कर दिया क्योंकि वे ही यज्ञादि संपन्न करते थे, जिनमें पशुओं की बलि एक महत्त्वपूर्ण

कृत्य माना जाता था। ब्राह्मण ही यज्ञ संपन्न कराते थे और मनुष्यों तथा देवताओं के मध्य मध्यस्थता करते थे, इसलिए अशोक के इस कार्य से ब्राह्मणों की शक्ति और सम्मान को धक्का लगा। अपने रूपनाथ लघुस्तंभ-लेख में अशोक स्पष्ट कहता है कि उसने भू-देवों को मिथ्या सिद्ध कर दिया है। ब्राह्मण भूदेव माने जाते थे। इससे ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा कम हुई। इसके अलावा अशोक ने धम्म-महामात्रों की नियुक्ति करके न्याय-प्रशासन के क्षेत्र में दंड-समता व व्यवहार-समता का सिद्धांत लागू किया, जो ब्राह्मणों के विशेषाधिकारों का हनन था।

अशोक पर यह भी आरोप लगाया जाता है कि उसने जिस प्रकार बौद्ध धर्म को प्रोत्साहन दिया, वह ब्राह्मण धर्म के लिए एक चुनौती था और ब्राह्मण वर्ग अपने आपको उपेक्षित महसूस करने लगा था। शास्त्री जी का अनुमान है कि शक्तिशाली अशोक के समय तक तो ब्राह्मणों पर नियंत्रण बना रहा, किंतु उसकी मृत्यु के बाद परवर्ती मौर्य शासकों और ब्राह्मणों में संघर्ष आरंभ हो गया जिसकी चरम परिणति पुष्यमित्र के विद्रोह में दृष्टिगोचर होती है।

हेमचंद्र रायचौधरी, पं. हरप्रसाद शास्त्री के मतों की समीक्षा कर उसे निराधार सिद्ध करते हैं। रायचौधरी का कहना है कि एक तो अशोक ने पशुबलि पर पूर्ण प्रतिबंध लगाया नहीं था और दूसरे स्वयं ब्राह्मण ग्रंथों में भी यज्ञादि अवसरों पर पशुबलि के विरोध के स्वर स्पष्ट सुनाई दे रहे थे। उपनिषद् पशुबलि तथा हिंसा का निषेध करते हैं। मुंडकोपनिषद् में स्पष्ट कहा गया है कि यज्ञ टूटी नौकाओं के समान हैं और जो मूढ़ इन्हें श्रेय मानकर इनकी प्रशंसा करते हैं, वे बारंबार जरामृत्यु को प्राप्त होते हैं।

यह कहना कि अशोक ने पृथ्वी के देवताओं को मिथ्या सिद्ध कर दिया, उचित नहीं है। वस्तुतः शास्त्री जी ने रूपनाथ के लघुशिलालेख की पदावली का गलत अर्थ लगाया है। सिलवां लेवी के अनुसार इसका अर्थ है, 'भारतवासी जो पहले देवताओं से अलग थे, अब देवताओं से (अपने उन्नत चरित्र के कारण) मिल गये।' इसमें ब्राह्मणों के विरुद्ध कुछ भी नहीं है। इसी प्रकार धम्म-महामात्रों के दायित्वों में भी ऐसा कोई उल्लेख नहीं है, जिसे ब्राह्मण-विरोधी कहा जा सकता है। वे तो ब्राह्मण, श्रमण आदि सभी के कल्याण के लिए थे। राजुकों जैसे न्यायाधिकारियों को जो अधिकार दिये गये थे, वे भी ब्राह्मणों के अधिकारों पर आघात करने के उद्देश्य से नहीं, अपितु दंड-विधान को अधिक लोकहितकारी एवं मानवीय बनाने के उद्देश्य से प्रेरित थे। उसके तीसरे, चौथे और पाँचवें लेख से स्पष्ट है कि वह ब्राह्मणों का सम्मान करता था। इस बात का कोई सबल प्रमाण नहीं है कि उसने बौद्ध धर्म को संरक्षण दिया। यद्यपि वह भाब्रू लेख में बौद्ध संघ को प्रणाम करता है, किंतु अशोक उस शैक्षणिक संस्थान में एक अतिथि के रूप में गया था, इसलिए एक बौद्ध संस्थान में बौद्ध संघ को प्रणाम करना यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है कि उसने बौद्ध धर्म को सरंक्षण दिया। इसके विपरीत अपने शिलालेखों में वह कहता है कि सभी धर्मों में संवृद्धि हो, अपने धर्म की प्रशंसा तथा दूसरे धर्म की निंदा नहीं करनी चाहिए।

परवर्ती मौर्यों और ब्राह्मणों के बीच संघर्ष होने का कोई साक्ष्य नहीं मिलता है। राजतरंगिणी से ज्ञात होता है कि कश्मीर शासक जालौक और ब्राह्मणों के बीच मधुर संबंध था। सेनापति के पद पर पुष्यमित्र की नियुक्ति स्वयं इस बात का प्रमाण है कि प्रशासन में ऊँचे पदों पर ब्राह्मणों की नियुक्ति की जाती थी। कुछ इतिहासकारों के अनुसार सेनानी पुष्यमित्र शुंग के विद्रोह को ब्राह्मणों द्वारा संगठित क्रांति कहना भी उचित नहीं है। उनके अनुसार यह तो एक सैनिक क्रांति थी, जिसमें धर्म का पुट नहीं था। वस्तुतः पुष्यमित्र की राज्य-क्रांति का कारण सेना पर पूर्ण अधिकार रखनेवाले सेनापति की महत्त्वाकांक्षा थी, असंतुष्ट ब्राह्मणों के एक समुदाय का नेतृत्व नहीं। नीलकंठ शास्त्री भी प्रस्तावित करते हैं कि अशोक की बौद्ध नीति संकीर्ण नहीं थी। उसकी धार्मिक नीति विश्वात्मक सहिष्णुता एवं विविध धर्मों में मैत्री स्थापित करने की थी। पुष्यमित्र की प्रधान सेनापति के रूप में नियुक्ति यह सिद्ध करती है कि परवर्ती मौर्य ब्राह्मणों को प्रतिक्रियावादी नहीं मानते थे। मालविकाग्निमित्रम् से भी पता चलता है कि बृहद्रथ की हत्या एक प्रकार से राजदरबार की गुटबंदी का परिणाम थी।

2. अशोक की शांति और अहिंसा की नीति

आर.डी. बनर्जी, आर.के. मुकर्जी, भंडारकर, रायचौधरी, एन.एन. घोष जैसे इतिहासकारों के अनुसार अशोक की शांति और अहिंसा की नीति ने मौर्य साम्राज्य के पतन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। बनर्जी के अनुसार अशोक के आदर्शवाद एवं धार्मिक नीति से अनुशासन प्रभावित हुआ। जब भेरीघोष का स्थान धम्म-विजय ने ले लिया, तो स्वयं साम्राज्य के पतन की घंटी बज गई। भंडारकर का विचार है कि विजय के स्थान पर धम्म-विजय की नीति अपनाने का परिणाम आध्यात्मिक दृष्टि से शानदार होते हुए भी राजनीतिक दृष्टि से विनाशकारी सिद्ध हुआ। रायचौधरी भी मानते हैं कि अशोक की शांतिवादी नीति ने मौर्य साम्राज्य की सैन्य-शक्ति को दुर्बल कर दिया और वह यवनों के आक्रमण का सामना करने में असमर्थ हो गया। अशोक स्वयं अपने चौथे शिलालेख में कहता है कि मेरे राज्य में अब भेरी-घोष, धम्म-घोष में बदल गया है। एन.एन. घोष का मानना है कि कलिंग युद्ध के पश्चात् अशोक ने रणचंडी के आह्वान करने की नीति को त्याग दिया। राधाकुमुद मुकर्जी भी मानते हैं कि मौर्य साम्राज्य के पतन में अशोक की धार्मिक नीति का योगदान था, किंतु मौर्य साम्राज्य के पतन का केवल यही कारण नहीं था।

यदि साम्राज्य के पतन के उत्तरदायी कारणों की दृष्टि से देखा जाये तो उपरोक्त आरोप निराधार प्रतीत होते हैं क्योंकि अशोक की बौद्ध नीति शांतिवादी नीति थी, इसको सिद्ध करने के लिए कोई ठोस आधार नहीं है। अशोक यदि इतना अहिंसावादी तथा शांतिवादी होता, तो उसने अपने राज्य में मृत्यदंड को बंद करवा दिया होता। अभिलेखों से स्पष्ट पता चलता है कि उसकी सैनिक-शक्ति सुदृढ़ थी। अपने तेरहवें शिलालेख में वह सीमांत प्रदेशों के लोगों तथा जंगली जनजातियों को स्पष्ट चेतावनी देता है कि वह केवल उन्हें ही क्षमा कर सकता है, जो इसके योग्य हैं। अशोक ने न तो अपनी सेना भंग की थी और न ही उनका अनुशासन किसी प्रकार कम हुआ था। सच तो यह है कि 'यदि अशोक अपने पिता और पितामह की रक्त तथा लौह की नीति का अनुसरण करता, तो भी कभी न कभी मौर्य साम्राज्य का पतन अवश्य होता। किंतु सभ्य संसार के एक बड़े भाग पर भारतीय संस्कृति का जो नैतिक आधिपत्य स्थापित हुआ, जिसके लिए अशोक ही मुख्य कारण था, वह शताब्दियों तक उसकी ख्याति का स्मारक बना रहा और आज लगभग दो हजार से भी अधिक वर्षों की समाप्ति के बाद भी यह पूर्णतया लुप्त नहीं हुआ है।' इस प्रकार स्पष्ट है कि अशोक की शांति और अहिंसा की नीति को मौर्य साम्राज्य के अध:पतन के लिए उत्तरदायी नहीं माना जा सकता है।